प्रकाशक :
अ० वा० सहस्रबुद्धे,
मंत्री, अ० भा० सर्व-सेवा-संघ,
वर्धा (म० प्र०)

पहली बार : २,०००
फरवरी, १९५६
मूल्य : एक रुपया

मुद्रक :
बालकृष्ण शास्त्री,
ज्योतिप प्रकाश प्रेस, विश्वे
बनारस । ५५७

समर्पण

नयी तालीम के विद्यार्थियों को

देश-सेवकों को और

देश-विदेश के गरीब किसानों को !

प्रारंभिक

जो आदमी सही तरीके से खुराक पाता है, वह ठीक-ठीक मोटा हो सकता है। जो पशु ठीक से दाना पाता है, वह खूब दूध और काम दे सकता है। जो जमीन पर्याप्त मात्रा में खाद पाती है, वह दाना-चारा भी, मन भरकर तौल से दे सकती है। हम लोगों ने जितना देखा-सुना है, उससे भी कहीं अधिक दे सकती है।

हम खुद एक की जगह चार पैदा कर सके हैं; एक की जगह सात, सारा "स्पेन" देश जमाने से पैदा कर रहा है; एक की जगह दस (एकड़ में १४७८), दक्षिण भारत (मर्करा गाँव) के एक किसान ने तीन साल पहले पैदा किया, और "कृषि-पंडित" की उपाधि के साथ पाँच हजार रुपये का नकद इनाम भारत-सरकार से प्राप्त किया।

इतनी उपज करने के तरीके बताने के लिए ही यह पुस्तिका है। जो करने के लिए भिड़ते हैं, उनके लिए ये तरीके आसान हैं और जो समझकर करते हैं, उनके लिए ये तरीके बहुफलदायी भी हैं।

यह पुस्तिका, हमारे गरीब और असहाय किसानों को, मद्देनजर रखकर लिखी गयी है और इसलिए इसमें गोबर को जलाने से रोकने की बात तक को अनिवार्य नहीं बताया गया है। बगैर उसके भी, उपज के मान को, ऊँची से ऊँची सीमा तक पहुँचाने के तरीके इसमें बताये गये हैं।

गरीब-से-गरीब किसान भी इन तरीकों को अपना सकते हैं; हाँ, आलसी किसान इन्हें नहीं अपना सकते। अनपढ़ और निरक्षर किसान भी इन्हें अपना सकते हैं; मगर विचारहीन और मतिमंद या साहसहीन किसान इन्हें नहीं अपना सकते।

इस पुस्तिका को आप गौर से पढ़ें और ध्यान से इसे समझने की कोशिश करें। आपको इसमें देश की अन्न-समस्या का निवारण मिलेगा और निराशाजनक बेकारी तथा सर्वनाशी भुखमरी का अच्छा इलाज भी।

—मथुरादास

मंगलाचरण

"करके सीखना" नयी तालीम का तरीका है, क्योंकि कृति के मेल से बुद्धि चौकस होती है, और बुद्धि के मेल से कृति सफल होती है। बिना कृति की बुद्धि, अ-चौकस, अ-स्थिर और बोझ-रूप रह जाती है। बिना बुद्धि की कृति, फल-हीन और बेगार-सी रह जाती है। यंत्रो का जो सम्बन्ध इंजन के साथ है, वही संबंध कृति का बुद्धि के साथ है। हाथ-पांव का जो संबंध दिमाग के साथ है, वही सबंध कृति का बुद्धि के साथ है।

"खेती-बारी के क्षेत्र में, बुद्धि का मेल कृति के साथ बैठाना" इस श्रम-यज्ञ का मकसद है।

साबरमती
ता० २६-१२-'५३

मथुरादास पुरुषोत्तम

अनुक्रम

संडास

मल को खुला छोड़ना बीमारियों को निमन्त्रण देना है। मल के सदुपयोग से उत्तम खाद बनायी जा सकती है। १० इंच चौड़ी और १० इंच गहरी नाली में फूस डालकर मल को मिट्टी से ढँक दिया जाय।
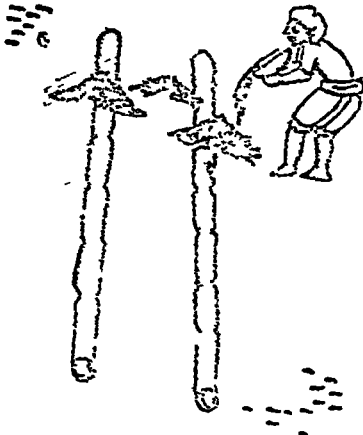
बाँस के दो टुकड़ों पर कचरा और घुला हुआ गोबर डाला जाय।
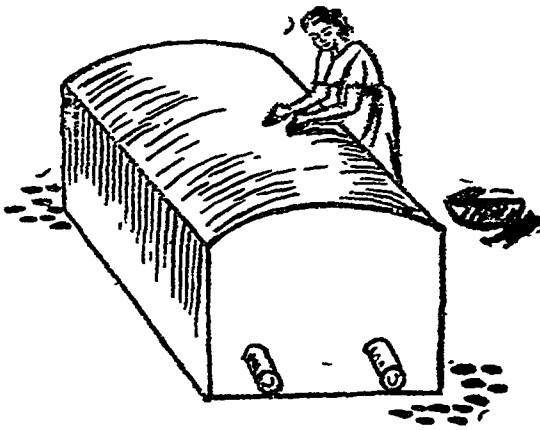
ढेर पर मिट्टी का लेप

ढेर पर मिट्टी का लेप किया जाय।
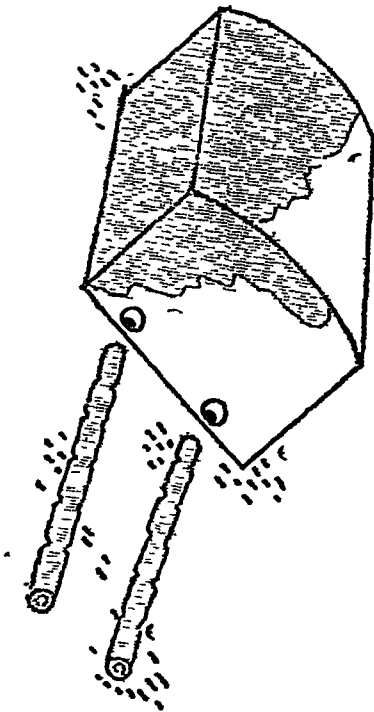
बाँस निकालने पर ढेर

ढेर पूरा होने पर बाँस निकाल लिया जाय। चार महीनों में खाद तैयार हो जाती है।

: १ :

पेड़-पौधों के गढ़न के प्रधान तत्त्व (नत्रजन, फास्फरस और पोटैशियम) और उनके गुण-धर्म

१. खाद के काम में मवेशियों के मल-मूत्र का उपयोग लंबे अरसे से, करीब सारी दुनिया में होता चला आ रहा है। चीन, जापान के लोग मल-मूत्र के अलावे खेती-बारी की काट-छाँट का भी उपयोग, बहुत समय से करते चले आ रहे हैं।

खोजबीन और शास्त्र का आविष्कार

२. खाद के मूल तत्त्वों का पृथक्करण करके और उन पर प्रयोग करके उसका शास्त्र बनाने का मूल श्रेय पाश्चात्य वैज्ञानिकों को है। आज हमें इन्हीं वैज्ञानिकों से जानकारी हासिल होती है।

३. पेड़-पौधों के गठन में, मूल तत्त्व तो अनेक लगते हैं, पर उनमें से अधिकांश की मात्रा इतनी कम रहती है और वे करीब सभी पेड़-पौधों को इतनी आसानी से जमीन में से मिलते हैं कि उनकी फिक्र वैज्ञानिक लोग नहीं करते। लेकिन जिन तत्त्वों को खाद के रूप में परिणत करना अनिवार्य है, वे तत्त्व केवल तीन ही हैं : नत्रजन, फास्फरस और पोटैशियम।

नत्रजन तत्त्व

४. नत्रजन तत्त्व एक प्रकार की वायु है। उसका गुण है, पेड़-पौधों के पत्तों को और डालियों को खूब तेजी से बढ़ाना और उन्हें हरा-भरा बना देना। इससे वायु-मंडल के पोषक तत्त्वों को भीतर खींचने का और फल-बीजों को जमाने का साधन, पेड़-पौधों को हासिल हो जाता है। साथ-ही-साथ जमीन और वायु-मंडल में से खींचे जानेवाले पोषक तत्त्वों से 'पोषक-रस' बना लेने का सरंजाम भी उनको हासिल होता है, क्योंकि उपर्युक्त सभी काम वे पत्ते ही सूरज-ताप की मदद से करते हैं।

फास्फरस तत्त्व

५. यह तत्त्व पेड़-पौधों की जड़ों को तेजी से बढ़ाता है और उन्हें जमीन की गहराई की ओर भी भेज देता है। इससे जमीन के पोषक तत्त्वों को अपने भीतर खींच लेने का साधन पेड़-पौधों को हासिल होता है और वर्षा यदि खिंच जाय, तो जमीन की गहराई से पानी को खींचकर अधिक समय तक टिके रहने की सुविधा भी उनको मिल जाती है।

६. पेड़-पौधों में फल और बीज लाने का काम भी यही तत्त्व करता है और इसके लिए, जमीन में से खींचे जानेवाले तत्त्वों को, फुनगियों की ओर ढकेलता भी रहता है।

पोटैशियम तत्त्व

७. यह तत्त्व नमक की तरह गलनेवाला एक पदार्थ है। (गलने के मानी हैं, वायु-मंडल के वायु-रूप जल को अपने भीतर खींच लेना और उसे द्रव-रूप मे परिवर्तित करके भीतर ही रख लेना)। पेड़-पौधे जमीन के और वायु-मंडल के पोषक तत्त्वों को क्रमशः सोरों के जरिये और पत्तों के जरिये जो अपने भीतर खींचते हैं, वह पोटैशियम के इसी गुण की बदौलत।

८. इस तरह पेड़-पौधों को, फल-बीजों के पुष्ट बनने की सामग्री हासिल होती है और कड़ी धूप मे अधिक समय तक हरे बने रहने के लिए काफी मात्रा में, दोनों ओर से पानी भी मिलता रहता है।

९. पेड़-पौधों के और फल-बीजों के गठन में इन तीनों तत्त्वों की जरूरत एक साथ पड़ती है और वे उनको करीब सभी प्रकार की जमीन से कमवेशी मात्रा मे भी मिलते ही रहते हैं।

१०. इन तीन तत्त्वों की कमी के परिणाम

(क) जहाँ नत्रजन तत्त्व अत्यन्त कम रहता है, वहाँ पेड़-पौधों का बढ़ाव बहुत ही मंद पड़ जाता है, उनके पत्ते नाटे और छोटे रह जाते है और पोले भी पड़ जाते हैं।

(ख) जहाँ केवल फास्फरस तत्त्व अत्यंत कम पड़ जाता है, वहाँ जमीन से खिंचकर पौधों में चढनेवाले तत्त्व फुनगियों की ओर तथा पत्तों की ओर नहीं बढ़ पाते। उन तत्त्वों के न पहुँचने से पत्ते उन पौधों का पोषक रस नहीं बना सकते; जिसका परिणाम यह होता है कि पत्ते फीके पड़ जाते हैं और जल्दी गिर जाते हैं। ऐसे पेड़-पौधों की जड़ें भी कम ही फैलती हैं, जिसका नतीजा यह होता है कि वे फलते भी हैं, तो कम ही फलते हैं और साथ-साथ फसल भी कमजोर होती है, पनपने में देर भी कर देती है तथा पकने मे भी अधिक समय लेती है।

(ग) पोटैशियम की अत्यधिक कमी से पेड़-पौधों के पत्तों की और जड़ों की काम करने की ताकत मारी जाती है तथा उन पेड़-पौधों की बढती रुक जाती है। वे फलते भी हैं, तो उनके फल और बीज, बहुत कम तो होते ही हैं, मगर उनमें का एक बड़ा हिस्सा खखड़ा, चिम्मड़, सूखा और छोटे-छोटे दानोंवाला रह जाता है।

११. इन तीन तत्त्वों की अधिकता के परिणाम

(क—१) यदि नत्रजन तत्त्व शेष तत्त्वों के मेल से अत्यधिक रहा, तो पेड़-पौधे बढ़ते तो हैं खूब, और पत्ते भी धरते हैं बड़े-बड़े, मगर वे पत्ते अपना काम ठीक से नहीं कर पाते और परिणामस्वरूप पत्ते और पौधे कमजोर रह जाते हैं, टूट जाते हैं, जमीन पर लेट जाते हैं और तरह-तरह की बीमारियां भी पकड़ लेते हैं।

(क—२) ऐसे पौधे यदि फलते भी हैं, तो वे बहुत ही कम फलते हैं और बहुत देर करके फलते हैं; क्योंकि उनकी बढ़ती के लायक सामग्री को जमीन से और वायु-मंडल से खींचनेवाला पोटैशियम उनमे कम रहता है, और खिंची हुई सामग्री को सारे तने में से ढकेलकर फुनगियों की ओर भेजनेवाला फास्फरस तत्त्व भी उनको कम मिला होता है।

(क—३) मिसाल के तौर पर, गाँव का मल-मूत्र वर्षा के पानी के साथ बहकर जिन खेतों में पड़ता है, उन खेतों पर की धान की हालत ठीक ऐसी ही होती है। उनके पौधे खूब ऊँचे बढ़कर जमीन पर लेट जाते हैं और फलते भी हैं तो बहुत ही कम, या कुछ भी नहीं। लोग कहते हैं कि यह धान "ढेड़िया गया", जिसके मानी होते हैं, 'एक-तरफा बढ़ गया।' ऐसे धान का पयाल अन्य पयाल की तुलना में विशेष स्वादिष्ट और विशेष पौष्टिक रहता है, क्योंकि फास्फरस की कमी के कारण, उनमें जो तत्त्व जमीन से खिंचकर आये रहते हैं, वे बीजों के रूप में परिवर्तित होने के लिए, फुनगियों तक न पहुँचकर, पौधों के तनों में ही, रह गये होते हैं। †

† ऐसी फसलों को या ऐसी जमीन को ठीक समय पर थोड़ा-सा पोटैशियम (प्रति एकड़ एक-डेढ़ गाड़ी राख) और थोड़ा-सा फास्फरस का तत्त्व (प्रति एकड़ एक-डेढ़ मन हड्डी की भस्म) यदि दिया जाय तो इन तत्त्वों की क्षति की पूर्ति हो जाती है और उस कारण उन पर की

(ख) इसी तरह फास्फरस की मात्रा यदि अत्यधिक रही, तो वह भी शेष तत्त्वों के कार्य की पर्वाह किये वगैर, नत्रजन की तरह अपने ही कार्य-विभाग पर जोर लगाये रहता है और पौधों मे पूरी सामग्री जुटने के पहले उनको फला देता है; जिससे वैसी फसलों पर दाने कुछ कम भी वैठते है और वे रहते भी है छोटे और पतले, जिससे फसल की मन्नी कम उतरती है।

(ग) पोटैशियम तत्त्व यदि अत्यधिक रहा, तो वह भी नत्रजन और फास्फरस की तरह, पेड़-पौधों की सारी जीवन-क्रिया को, अपने काय-क्षेत्र की ओर खींचे रहता है और शेष तत्त्वों की प्रवृत्ति मे बाधा भी पहुँचाता रहता है। इससे वैसी फसलों के पत्ते और जड़ें अपना काम तो खूब करती रहती हैं और पेड़-पौधे पुष्ट भी वनते रहते हैं, मगर उनके पत्तों की और जड़ों की संख्या की वढ़ती और डालियों की वढ़ती रुक जाती है और परिणामस्वरूप ऐसी फसलें दाने कम धर पाती हैं, यद्यपि पोटैशियम की मौजूदगी के कारण दाने होते हैं खूब पुष्ट। ऐसी फसलें भी देर मे फलती हैं।

समतोल खाद और पर्याप्त मात्रा का असर

१२. किसी तरह की कमी या विषमता न रहने देकर तीनों तत्त्व यदि पर्याप्त और समतोल मात्रा मे दिये गये हों, तो वगैर-खादवाले खेतों की तुलना मे, उन खेतों की फसल अनेक गुनी एक ही साल मे वढायी जा सकती है; क्योंकि उस हालत में नत्रजन डालियों को और पत्तों को खूब वढ़ाता है और फास्फरस जड़ों को खूब वढाता है एवं पोटैशियम इन दोनों अंगों के जरिये वायु-मंडल के और जमीन के पोषक तत्त्वों को यथेष्ट

फसल, सामान्य फसलों से भी तीन गुनी तक बढ़ सकती है। ये दोनों चीजें रोपनी के पहले खेतों में कादा करते समय पाट देनी चाहिए।

मात्रा में भीतर की ओर खींचता है; जिससे पोषक-तत्त्व पेड़-पौधों में यथेष्ट मात्रा में एकत्र होते हैं और फास्फरस तत्त्व पौधों के समूचे अंगों से इन सभी तत्त्वों को, अधिक-से-अधिक मात्रा में फुनगियों की ओर ढकेलकर उनको अधिक-से-अधिक पैमाने पर अनाज के रूप मे परिवर्तित करने में सहयोग देता है; जिससे फसल भी काफी होती है और उसके दाने भी पुष्ट बनते हैं। साथ-साथ ये तीनों तत्त्व, अपने-अपने क्षेत्र में रहकर उन पेड़-पौधों की रक्षा भी करते हैं, जैसे कि नत्रजन तत्त्व पेड़-पौधों को ठंढा रखता है; फास्फरस उनको सूखे में पानी देने के लिए उनकी जड़ों का खूब गहराई तक नीचे की ओर ले जाता है और पोटैशियम, जमीन के और वायु-मंडल के जल को भीतर खींच लेता है।

卐 卐 卐

: २ :

पोषक तत्त्व कहाँ हैं और पेड़-पौधों को वे किस तरह प्राप्त होते हैं ?

१३. अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि पेड़-पौधों के ये पोषक तत्त्व किन-किन पदार्थों में हैं और किसानों को वे किस तरह प्राप्त हो सकते हैं।

१४. इसके लिए हमें पदार्थ-विज्ञान (Science), कृषि-रसायन-विज्ञान (Agricultural Chemistry) आदि पाश्चात्य विज्ञानों का सहारा लेना होगा।

१५. कृषि-रसायन-विज्ञान हमारे सामने निम्न बातें प्रस्तुत करता है :

(१) पहले कहे हुए तीनों पोषक तत्त्वों में से फास्फरस और पोटैशियम के तत्त्व करीब-करीब हर भू-भाग में इतनी पर्याप्त तादाद मे मौजूद हैं कि हम सैकड़ों सालों तक उन जमीनों से मनमानी फसलें लेते रहें, तो भी वे कम न होंगे।

(२) नत्रजन तत्त्व भी वायु-मंडल में उतनी ही अधिक मात्रा में भरा पड़ा है। वायु-मंडल के पाँच हिस्सों मे से चार हिस्से इसी तत्त्व के बने हैं।

तत्त्व किस रूप में ?

१६. मगर इन तत्त्वों को कुदरत ने ऐसे ढंग से रखा है कि बिना उन्हें विघटित किये, पेड़-पौधे इनको अपने भीतर खींच ही नहीं सकते तथापि पेड़-पौधों को उसने यह ताकत भी दे रखी

हैं कि वे अपनी-अपनी आवश्यकता के अनुसार उन्हें विघटित करते रहें और अपने भीतर उन्हें खींचते रहें।

१७. पेड़-पौधों की सोरों से कर्बुदाम्ल (carbonic acid) नाम का एक खट्टा रस निःश्वास के रूप में बराबर निकलता रहता है। यह रस जमीन मे के फास्फरस और पोटैशियम तत्त्वों को विघटित करने की क्षमता रखता है। इन विघटित तत्त्वों के साथ पेड़-पौधे उस रस को पुनः अपने भीतर खींचते रहते हैं और उसके द्वारा अपना पोषण करते हैं ; जब कि नत्रजन तत्त्व के लिए कुदरत ने द्विदल‡ वर्ग के पौधों को ही यह ताकत दी है कि वे वायु-मंडल से इस तत्त्व को लेकर अपना पोषण करें। मगर ये पौधे, अपने पोषण के लिए जितनी जरूरत है, उससे काफी अधिक मात्रा में इस तत्त्व को अपने भीतर में लेते हैं और उसे जमीन में संचित करते हैं। इससे, बाद में आनेवाली अन्य फसलों को भी, जो इस तत्त्व को वायु-मंडल से खींच नहीं सकती, यह तत्त्व सहज ही में पर्याप्त मात्रा में उसी जमीन से मिल जाता है। रासायनिकों ने मिट्टी का विश्लेषण करके देख लिया है कि आम तौर पर जमीन में जितना नत्रजनतत्त्व रहता है, वह प्रति एकड़ पाँच रतल से लेकर पचास रतल तक तब तक बढ़ जाता है जब तक द्विदल अन्न की फसले उस जमीन से निकाल ली जाती हैं। कृषि-विशेषज्ञ अनाज की एक फसल के लिए इस तत्त्व की आवश्यकता प्रति एकड़ अट्ठाईस से साठ रतल तक बताते हैं।

तत्त्व : भोज्य-रूप बनने की क्रियाएँ

१८. इस स्वाश्रयी तरीके के अलावा और भी एक जरिया है, जिससे ये तीनों तत्त्व जमीन और वायुमंडल से भोज्य-रूप में परि-

‡ अरहर, चना, मूँग, मटर आदि अन्न द्विदल कहलाते हैं। जिस अन्न में दो समान दल होते हैं, उसे द्विदल कहते हैं।

वर्तित होकर, पेड़-पौधों को उपलब्ध होते रहते हैं। जमीन में कुदरती तौर पर अनगिनत सूक्ष्म कीटाणु और कीड़े पैदा होते रहते हैं, जो इन तीनों तत्त्वों को बहुत ही बड़ी मात्रा में भोज्य-रूप में तैयार करके पेड़-पौधों के लिए सुलभ बनाते रहते हैं। जैसे कि :

(१) इन कीड़ों और कीटाणुओं के निःश्वास से अविरत रूप से कार्बोद वायु (Carbon dioxide gas) निकलता रहता है। यह वही कर्बुदाम्ल है, जो पेड़-पौधों की सोरों से निःश्वास के रूप में निकलता रहता है और जो जमीन के भीतरवाले फास्फरस और पोटैशियम तत्त्वों को विघटित करता रहता है।†

कीटाणु-सृष्टि के निःश्वासजनित इस वायु की मात्रा बहुत ही जबर्दस्त होती है। अतः इस जरिये से, पेड़-पौधों को जमीन से विघटित होकर मिलनेवाले पोषक तत्त्वों की मात्रा भी उतनी ही जबर्दस्त होती है।

(२) इन कीड़ों-कीटाणुओं के देह-गठन में नत्रजन की मात्रा उनके अपने वजन के, दस फी-सदी हिस्से के बराबर रहती है और उनके मरने पर यह तत्त्व जमीन को बराबर मिलता रहता है; और ये कीड़े-कीटाणु वहाँ साल भर में अनेक बार जन्मते-मरते रहते हैं।

(३) इन कीड़ों-कीटाणुओं के मल में तीनों पोषक तत्त्वों की मात्रा, इर्द-गिर्द की मिट्टी की तुलना में अनेक गुनी अधिक रहती है। जमीन के केंचुओं के मल के विश्लेषण से मालूम हुआ है कि उसमें नत्रजनतत्त्व की मात्रा, उसी खेत की शेष मिट्टी की तुलना में पाँच गुनी अधिक होती है; फास्फरसतत्त्व की मात्रा

---

† कार्बोद वायु का एक अणु पानी के एक अणु के साथ जब मिल जाता है, तब वह 'कर्बुदाम्ल' कहलाता है।

सात गुनी अधिक होती है और पोटैशियम तत्त्व की मात्रा ग्यारह गुनी अधिक होती है।

जिन जमीनों में इन कीड़ों-कीटाणुओं की संख्या पर्याप्त रहती है, उन जमीनों में केवल केंचुओं का मल प्रति साल और प्रति एकड़ साठ-साठ, सत्तर-सत्तर गाड़ी तक तौला गया है। (एक गाड़ी = सुखाये हुए तौल से दस मन।)

अच्छी-से-अच्छी पुष्ट मिट्टी में, केंचुओं की संख्या अधिक-से-अधिक प्रति एकड़ पचास हजार तक पायी गयी है, जब कि उसी मिट्टी में सूक्ष्म कीटाणुओं की संख्या प्रति तोला मिट्टी में तीन-तीन करोड़ तक बढ़ती हुई पायी गयी है। तो अब उन कीटाणुओं के मृत देहों से और उनके मल से, जमीन को मिलनेवाली खाद की मात्रा, उपर्युक्त साठ-सत्तर गाड़ियों से कितनी अधिक होती होगी, इसका अनुमान कीजिये।

(४) इन तीन जरियों के अलावा, एक और भी जरिया यह देखने में आया है कि इन कीड़ों-कीटाणुओं के कई वर्ग वायु-मंडल के नत्रजन तत्त्व को भी अपने श्वास से लेते हैं और उसे जमीन में जमाते रहते हैं।

तथ्य-निष्पत्ति

१९. इन तथ्यों से यह सार निकलता है कि :

(क) पेड़-पौधों की सोरें, जो जमीन के पोपक तत्त्वों को भोज्य-रूप में परिवर्तित करती हैं, उनकी संख्या को यदि यथाशक्य पैमाने तक बढ़ा लेने का प्रबन्ध होता रहे,

(ख) यदि द्विदलों की एक फसल, नियमित रूप से हर साल लगाने का नियम जारी रहे; और

(ग) यदि जमीन में के कीड़े-कीटाणुओं की संख्या को जहाँ तक शक्य हो, अधिक-से-अधिक पैमाने तक, बढ़ा लेने का प्रबंध किया जाता रहे, तो,

खाद की कमी बाधक नहीं

फसलों की मात्रा चाहे जितनी बढ़ा लेने में, खाद की कमी बाधक नहीं हो सकती।

२०. उक्त तीन उपायों में से

(१) पेड़-पौधों की सोरों को बढा लेने का एक तरीका हम पिछले लेख में देख चुके हैं कि पेड़-पौधों की सोरों को बढाने-फैलाने का काम, फास्फरस तत्त्व करता है और उस तत्त्ववाली खादों को खेतों में पटाने से पेड़-पौधों की सोरें बढ़ायी जा सकती हैं।

(२) द्विदलों की एक फसल हर साल लगाते रहने के काम को भी, हमारे देश के सभी किसान जानते हैं कि किस प्रदेश में द्विदल-अन्नों की कौन चीज किस मौसम में लगायी जा सकती है।

२१. अंत में केवल एक उपाय की बात रह जाती है कि जमीन के कीड़े-कीटाणुओं की सृष्टि को अधिक-से-अधिक संख्या तक बढ़ा लेने का तरीका क्या है ?

२२. इसका जवाब सहज है कि इन कीड़े-कीटाणुओं के खाने लायक पदार्थों को, पर्याप्त मात्रा में खाद के रूप में, खेतों में पाट देने से इनकी संख्या खूब ही बढा ली जा सकती है। मगर खेतीबारी की दृष्टि से यह बात इस मानी में बहुत अधिक महत्त्व रखती है कि इससे पेड़-पौधों का पोषण विज्ञान, "खादशास्त्र" के रूप को छोडकर, वह कीड़े-कीटाणुओं की खुराक के शास्त्र के रूप में परिवर्तित हो जाता है।

२३. जमीन के कीड़े-कीटाणुओं की खुराक

तो अब हम देखें कि वह खुराक क्या है और वह कैसी होती है।

कुदरत की योजना में यह करुणा निहित है कि भिन्न-भिन्न कोटि के जीवों के लिए जीने का क्षेत्र भी अलग-अलग है और

इनके पोषण का प्रबन्ध भी अलग-अलग है। मानव प्राणी का जीवन जब बगैर अनाज के नहीं टिक सकता, तब मवेशी वगैरह अहिंसक चौपायों के लिए वह खुराक गौण ही है। जमीन के कीड़े-कीटाणुओं के लिए भी घास और कड़वी गौण है, जो कि मवेशियों की प्रधान खुराक है। इन कीड़े-कीटाणुओं को प्रधानतया पेड़-पौधों के सड़े-गले पत्ते चाहिए और खेती-बारी की काट-छाँट चाहिए जिनकी जरूरत अन्य किसी वर्ग की जीव-सृष्टि को नहीं होती।

२४. इन सभी कोटि के जीवों की खुराक में, पदार्थ-भेद तो अवश्य है, मगर तत्त्व-भेद नहीं है। पदार्थ-विज्ञान (Science) से यह भी जानने को मिलता है कि :

(१) इन सभी चीजों में सबसे अधिक अंश, कार्बोद-पदार्थ † का है और कुछ हिस्सा प्रोत-द्रव्य का भी है;

(२) ये दोनों पदार्थ, प्रधानतया कोयला-तत्त्व (Carbon) के मेल से बने हुए हैं; और

(३) इनमें नत्रजन, फास्फरस और पोटैशियम के अंश बहुत छोटे-छोटे ही हैं।

---

† कोयला-तत्त्व के मेल से बने हुए तीनों पदार्थों के भेद :

(१) "कार्बोद्‌वायु" यह पदार्थ वायु के रूप में है और एक अंश कोयला-तत्त्व और दो अंश प्राणवायु के मेल से बना हुआ है CO^2।

(२) "कर्बुदाम्ल" यह पदार्थ, तरल यानी प्रवाही रूप में है और एक अणु कार्बोद्‌वायु के, और एक अणु जल के मेल से बना हुआ है; जब कि—

(३) "कार्बोद पदार्थ" (Carbo-hydrates) नाम मुख्यतया उन पदार्थों के लिए प्रयुक्त होता है, जो घन-रूप में हैं और जिनमें कोयला-तत्त्व की मात्रा सबसे अधिक रहने के साथ-साथ उद्‌जन (Hydrogen) वायु की मात्रा भी, उपर्युक्त दोनों पदार्थों की तुलना में अधिक है।

२५. उपर्युक्त सभी कोटि के जीवों के खुराक-शास्त्र से यह भी ज्ञात होता है कि :

(क) जिस तरह मानव-प्राणी की खुराक में, करीब चार हिस्से कार्बोद-प्रधान भात और रोटी के आवश्यक होते हैं और केवल एक ही हिस्सा प्रोत (Protein)-प्रधान दाल का आवश्यक होता है, ठीक उसी तरह कीडे-कीटाणुओं की खुराक मे भी, चार हिस्से खेतीवारी की काट-छॉट के और एक हिस्सा अन्य सजीव सृष्टि के मल-मूत्र का आवश्यक होता है; और

(ख) जिस तरह मानव-प्राणी को क्षारों के लिए और चेतन-तत्त्वों (विटामिनों) के लिए कुछ तरकारी और कुछ फल आवश्यक हैं, ठीक उसी तरह जमीन में के कीड़े-कीटाणुओं को भी कुछ अन्य सजीवसृष्टि के मृतावशेष और कुछ हरी "घास-पात" (Green manure) भी मिलना आवश्यक है।

२६. इस तरह जब कीड़े-कीटाणुओं की खुराक मे, कोयला-तत्त्व की मात्रा सबसे अधिक है, तब यह जानना भी जरूरी हो जाता है कि पेड़-पौधों के पोषण-विज्ञान मे कोयला-तत्त्व का स्थान क्या है।

卐 卐 卐

: ३ :

कोयला-तत्त्व

२७. अब तक कोयला-तत्त्व का कोई विवेचन नहीं किया गया। इस तत्त्व की आवश्यकता की जानकारी रहने पर भी, वैज्ञानिकों की मान्यता यह थी कि यह तत्त्व पेड़-पौधों को यथेष्ट मात्रा में वायुमंडल के द्वारा मिलता ही रहता है और उसे खाद के रूप में पाटने की कोई जरूरत नहीं है। खाद के रूप में पाटने की आवश्यकता तो कृषिविज्ञान के आविष्कार के अस्सी साल के बाद महसूस होने लगी। मगर उस समय भी इसके सम्बन्ध में वैज्ञानिकों में दो मत हो गये। पर हम अभी यहाँ केवल उतनी ही जानकारी देना चाहते हैं, जिसमें कोई मतभेद नहीं है।

प्राण-वायु का संयोग

२८. जिन्दा रहने के लिए अन्य सजीव सृष्टि की तरह, पेड़-पौधों को भी कुछ गर्मी की आवश्यकता होती है। यह गर्मी इन सभी को भी, कोयला-तत्त्व को प्राण-वायु के साथ के रासायनिक योग से मिलती है और कुदरत ने इस सारी सजीव सृष्टि की खुराक में कोयला-तत्त्व ही सबसे अधिक मात्रा में भर दिया है। साथ ही साथ वायुमंडल में उसने प्राणवायु भी यथोचित मात्रा में रख दी है। सारी सजीव सृष्टि श्वास के जरिये इस प्राणवायु को अपने भीतर खींचती रहती है और देह के भीतर पहुँचने पर वह प्राणवायु, ग्रहण की गयी खुराक के कोयला-

तत्त्व के साथ रासायनिक प्रक्रिया से मिलती रहती है और इस रासायनिक मिलन में से गर्मी पैदा होती रहती है, जो कि श्वास लेनेवालों की उष्णता कायम रखती है।

२९. कोयला-तत्त्व और प्राणवायु के इस मिलन से, 'कार्बोद्-वायु' नामक संयुक्त पदार्थ पैदा होता है। देह के लिए यह अनावश्यक है, अतः निःश्वास के जरिये यह स्वयं बाहर निकलता रहता है।

पेड़-पौधे एवं जीव-सृष्टि

३०. रसोई के लिए जब लकड़ियाँ और प्रकाश के लिए जब बत्तियाँ जलायी जाती हैं, तब भी ठीक यही प्रक्रिया चलती है; फर्क केवल इतना ही है कि इनकी प्रक्रियाएँ अतीव तीव्र होती हैं, जब कि देह में चलनेवाली प्रक्रिया उतनी ही मंद होती है। अन्य जीव-सृष्टि अपनी-अपनी नासिका से श्वास लेती है और पेड़-पौधे अपने पत्तों से और सोरों से श्वास लेते हैं। इनमें से किसी एक क्रिया में भी यदि बाधा पहुँचती है, तो वे पेड़-पौधे कमजोर पड़ जाते हैं। और यदि इनमें से कोई एक भी सिलसिला टूट जाता है, तो वे मर ही जाते हैं।

३१. पेड़-पौधों पर कुदरत की इस योजना के कारण पड़नेवाले प्रभाव को एकाध मिसाल से समझने का अब हम प्रयत्न करेंगे।

ध्रुव-प्रदेशों की स्थिति

उत्तरी और दक्षिणी ध्रुव-समुद्र के तटवर्ती प्रदेशों में जब पेड़-पौधे दस-बारह इञ्च से अधिक ऊँचे नहीं उठ सकते, तब भूमध्य-रेखा (Equator) की ओर बढ़ते-बढ़ते, उनकी विशालता इतनी अधिक बढ़ जाती है कि भूमध्य-रेखा के समीपवर्ती प्रदेशों में (अफ्रीका में) उनके जीवित तनों को काटकर, उनके अंदर से

रेलगाडी भी चलायी गयी है। इसका एक कारण यह है कि ध्रुव-प्रदेशों में सर्दी इतनी कड़ाके की रहती है कि वहाँ समुद्र साल भर में आठ-नौ माह तक बर्फ से जमे रहते हैं, जब कि भूमध्य-रेखा-वाले प्रदेशों में शरद् ऋतु ही नदारद है। ऐसे सर्द प्रदेशों में पेड़-पौधों को अपनी गर्मी को टिकाये रखने के लिए अपनी देह के अधिकांश कोयला-तत्त्व को तीव्र श्वास-क्रिया के जरिये जला देना पड़ता है। पर गर्म प्रदेशों के पेड़-पौधे उस हानि से करीब-करीब पूरे ही बचे रह सकते हैं।

३२. ध्यान रखने की बात यह भी है कि पेड़-पौधों के गठन में सर्वाधिक हिस्सा कोयला-तत्त्व का ही है। किसी वृक्ष को जला देने पर उसका जितना हिस्सा जलकर वायु-मंडल में मिल जाता है, उसमें जल-पदार्थ को छोड़कर शेष करीब सारा-का-सारा भाग कोयला-तत्त्व के ही मेल से बना हुआ रहता है।

कोयला-तत्त्व का महत्त्व व उत्पादन

३३. इस तरह पेड़-पौधों की जीवन-क्रिया के लिए भी केवल कोयला-तत्त्व ही व्यय होता है और उनकी देह-गठन में भी सर्वाधिक हिस्सा उसी तत्त्व का रहता है। इस मिसाल से हम अन्दाजा लगा सकते हैं कि पेड़-पौधों के जीवन में इस तत्त्व का महत्त्व कितना अधिक है।

३४. इस तत्त्व को पेड़-पौधों के पत्ते वायुमंडल से श्वास के जरिये अपने भीतर खींचते हैं और दिन के समय में सूर्यताप की मदद से उसे अपनी देह में गढ़ते हैं।

३५. वायुमंडल में इस तत्त्व का अंश ·०००३ है। (यानी दस हजार में तीन मात्र है।) किन्तु पेड़-पौधों के जरिये खिंचते रहने पर भी इस तत्त्व का यह अंश घटता नहीं है, उतने ही प्रमाण पर टिका रहता है; क्योंकि :

(१) रसोई के लिए जो लकड़ियाँ जलायी जाती हैं, उनसे यह तत्त्व बड़े पैमाने पर वायुमंडल को मिलता रहता है।

(२) इस तत्त्व की इससे भी अधिक बड़ी मात्रा थलचर और नभचर प्राणियों के निःश्वास से निरन्तर निकलकर वायुमंडल को मिलती रहती है।

(३) और शायद इन दोनों से भी अधिक एक बहुत बड़ी मात्रा, जमीन के भीतर रहनेवाले अनंत कीड़े-कीटाणुओं के निःश्वास के कारण ऊपर उठती रहती है और बाहर आकर वायुमंडल को मिलती रहती है।

३६. प्रयोगों से पता चला है कि पेड़-पौधों के पत्तों के पास इस तत्त्व की मात्रा कृत्रिम उपायों से बढ़ा देने से उन पेड़-पौधों की फसल बहुत अधिक बढ गयी है।

भीतरी कीटाणुओं का उपयोग

३७. किन्तु प्रयोग भर के लिए यद्यपि प्रस्तुत तरीका शक्य हुआ हो, तो भी व्यावहारिक उपयोग की दृष्टि से यह अशक्यप्राय ही हो सकता है। फिर भी जमीन के भीतरी कीड़े-कीटाणुओं ने उसे अनायास ही शक्य बना दिया है। उनकी अनन्त संख्या निरन्तर और अटूट रूप से श्वासोच्छ्वास की जो क्रिया करती रहती है, उस निःश्वास से भी यही कार्बोद्वायु निकलती रहती है, जिससे जमीन की वायु में इस वायु का अंश, बाहरी वायु-मंडल के '०००३ से अनेक गुना अधिक रहता है: मगर उसकी मात्रा का आधार, जमीन के कीटाणुओं की संख्या पर अवलंबित रहता है और उस संख्या का आधार जमीन में पाटे जानेवाले, उनकी खुराक-रूप कार्बोद-प्रधान खाद की मात्रा पर अवलम्बित रहता है। प्रयोगों से पता चला है कि जमीन में इस वायु का अंश कम-से-कम '१२% रहता है और अधिक-से-अधिक वह १'५%

तक जाता है। इसका अर्थ हुआ कि बाहरी वायु-मंडल के इसके अंश से जमीन के इसके अंश का घनापन चार गुना से लेकर पचास गुना तक अधिक रहता है।

३८. कोयला-तत्त्व का कार्यविस्तार

संक्षेप में कहा जा सकता है कि—

(१) सारी जीव-सृष्टि की देहगठन में कोयला-तत्त्व सर्व-प्रधान है।

(२) पेड़-पौधों की गठन में उसकी मात्रा और भी अधिक है।

(३) चर-सृष्टि की खुराकों में यानी नाजों में, घास-कड़वी में और बीजों मे भी उसीकी मात्रा सर्वाधिक है; और

(४) पेड़-पौधों की खुराक में भी उसीकी मात्रा सर्वाधिक है। अलावा

(५) वायु-मंडल में इसका घनापन फसल को बढ़ाता है, और

(६) जमीन में का इसका घनापन पेड़-पौधों के जमीन के भीतरी पोषक तत्त्वों को विघटित करके पेड़-पौधों के खाने लायक भी बनाता रहता है, और एक बड़ी मात्रा में जमीन से बाहर उठ-कर, पेड़-पौधों के पत्तों के पास के अपने घनेपन को भी बराबर के लिए बढ़ा हुआ रखकर, उनकी फसलों को खूब बढ़ाता रहता है।

३९. यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि सारी चराचर सृष्टि का निर्माण कुदरत ने इसी तत्त्व की प्रधानता के आधार पर किया है।

इसके उपयोग के तरीके

४०. इसके और भी सबूत हम आगे देखेंगे। यहाँ तो हम इतना ही खयाल में रखें कि :

(१) पेड़-पौधों के पत्ते इस तत्त्व को केवल वायु (कार्बोद-वायु) के रूप में ही अपने भीतर खींच सकते हैं।

(२) उनकी सोरें उसको वायु-रूप के अलावा रस-रूप में (कर्बुदाम्ल के रूप में) भी अपने भीतर खींच ले सकती हैं। जब कि

(३) किसान-वर्ग के हाथ में तो यह तत्त्व मुख्यतया स्थूल रूप में ही आता है और उस रूप में उसे पेड़-पौधों के लिए ग्राह्य बनाने का एकमात्र कारगर तरीका उसको कीड़े-कीटाणुओं की खुराक के लायक बनाकर उनकी मार्फत, उसको वायु-रूप में और प्रवाही रूप में परिवर्तित कर लेने में है। यानी पेड़-पौधों को खाद पाटने का, किसान के वश का, प्रधान तरीका कीड़े-कीटाणुओं की खुराक के रूप का ही है।

कीड़े-कीटाणुओं की कारगुजारी और जमीन का बनना

४१. वैज्ञानिकों की मान्यता है कि संपूर्ण पृथ्वी पहले एक प्रचंड पत्थर जैसी थी। फिर कुदरत ने उसकी ऊपरी सतह को तोड़-तोड़कर उसमें से बड़ी-बड़ी शिलाएँ बनायीं, फिर शिलाओं में से बड़े-बड़े पत्थर, पत्थरों में से रोड़े, रोड़ों में से कंकड, कंकड़ों में से बालू, बालू में से रेत और रेत में से महीनतम धूलि बनायी। इस प्रकार यह मिट्टी बनी।

४२. पृथ्वी के विकास का प्रारम्भिक काम कुदरत ने सर्दी-गर्मी की संकोच-विस्तार-शक्ति की मदद से किया और शेष कुछ काम उसने बहते वायु और पानी के घर्षण की मदद से भी किया। मगर बालू और रेत में से धूलि बनाने का अन्तिम काम तो उसने मुख्यतया 'कार्बोद-वायु' की "पृथक्करण-शक्ति" से ही किया है।

४३. यद्यपि कार्बोद-वायु की यह रासायनिक प्रक्रिया अतीव मंद गति से चलती रहती है, फिर भी सारे भूमंडल ने पत्थर-

कंकड़ से जितनी भी वालू और वालू से महीनतम धूलि और मिट्टी वनी है, उसका अधिकतम हिस्सा इसी कार्बोद-वायु की "पृथक्करण-शक्ति" की वदौलत वना है और सारे पृथ्वीपट पर जितनी जमीन दिखाई देती है, वह भी सवकी सव इस तरह की हजारों सालों की प्रक्रिया के फलस्वरूप वनी हुई है।

४४. इसमें से वालू वनने तक का काम मुख्यतया पृथ्वीपट के ऊपर वना हुआ है और अव भी अविरत रूप से वनता ही रहता है, जव कि वालू में से रेत और महीनतम धूलि और मिट्टी वनने का काम तो मुख्यतया जमीन के गर्भ में और इस वायु के असर से वना हुआ है और अविरत रूप से वनता भी रहता है।

४५. जमीन के कीड़े-कीटाणुओं द्वारा वनाये हुए, छिद्रों के जरिये और वर्षा के पानी के साथ घुलकर भी यह वायु भूगर्भ में पैठती रहती है। मगर इसका प्रधानतम हिस्सा तो जमीन के कीड़े-कीटाणुओं के अटूट और अविरत रूप से चलते हुए श्वासोच्छ्वास से ही वहाँ पैदा हुआ होता है।

४६. इस तरह इस पृथ्वीपट पर जो झाड़ और जंगल फैले हुए हैं और जो खेती-गृहस्थी होती रहती है, उस सारी जमीन को वनाने का अधिकाधिक श्रेय नगण्य-से दिखाई देनेवाले इन कीड़े-कीटाणुओं को है।

इनके सम्वन्ध में और विशेप जानकारी आगे के पृष्ठों में आवेगी।

卐 卐 卐

: ४ :

कृषि-जीवन में कीड़े-कीटाणु और केशिका-जाल का महत्त्व

४७. जमीन के अन्दर वायुसंचार के मार्ग

(क) देह की गर्मी को टिकाये रखने के लिए जिस तरह सभी को अपनी खुराक मे कोयला-तत्त्व की जरूरत रहती है, इसी तरह इस कोयला-तत्त्व को जलाने के लिए भी सभी को श्वास के द्वारा प्राणवायु अपने भीतर खींचते रहने की जरूरत रहती है। पेड़-पौधे इस वायु को अपने पत्तों और सोरों के जरिये अपने भीतर लेते हैं। यह प्रबन्ध यदि टूट जाय, तो पेड़-पौधों का जीवन जोखिम मे पड़ जाता है। इस तत्त्व की आमदरफ्त के मार्गों का भूगर्भ मे कायम और आबाद रहना पेड़-पौधों के अस्तित्व के लिए अनिवार्य है।

(ख) भूगर्भ मे इस प्राणवायु के आमदरफ्त का प्रबन्ध कायम रहने पर, पेड़-पौधों के जमीन के भीतरी पोषक तत्त्व जो कि विघटित हो-होकर पेड़-पौधों को मिलते रहते हैं, उनका रूपान्तरित पुनर्गठन, प्राणवायु के संयोग से बनता है और तब वह पुनर्गठित पदार्थ, पेड़-पौधों के लिए पोषक और हितकर होता है। मगर जहाँ यह प्रबंध नहीं रहता है, वहाँ ये तत्त्व अन्य तत्त्वों के संयोग से पुनर्गठित होते हैं। पर वह पुनर्गठित पदार्थ पेड़-पौधों के लिए अनिष्ट और नाशक रहता है। इसलिए वैसी जमीनों में कोई पौधा नहीं जमता। ऐसी काफी जमीनें मध्य

एशिया, ईरान और उत्तर अफ्रीका आदि देशों में वीरान होकर पड़ी हुई हैं और हमारे यहाँ उत्तर भारत में भी ऐसी जमीनें काफी हैं। मतलब यह कि पेड़-पौधों की पोषक खुराक बनने के लिए भी उपर्युक्त मार्गों का कायम और आबाद रहना अनिवार्य ही है।

(ग) जमीन के भीतरी कीटाणुओं की सृष्टि के श्वास लेने के लिए भी, भूगर्भ में इस वायुमार्ग का रहना उतना ही अनिवार्य है। यह प्रबंध जितना अच्छा और विशाल होता है, उतनी ही उस जमीन की कीटाणु-सृष्टि तन्दुरुस्त और कार्यपटु रहती है। उतने ही उस जमीन के विगठित और पुनर्गठित पोषक तत्त्व, स्वास्थ्यवर्धक और पौष्टिक बनते हैं और उतने ही उस जमीन पर के पेड़-पौधे तन्दुरुस्त, पुष्ट और उपजाऊ बनते हैं।

(घ) जिन मार्गों से बाहरी वायु के आने-जाने का प्रबन्ध रहता है, उन्हीं मार्गों में पैठकर, पेड़-पौधों की सोरें फैलती हैं। इसलिए उन मार्गों का प्रबन्ध अच्छा रहे, तो उन जमीनों पर की पेड़-पौधों की सोरें भी बड़ी तेजी के साथ फैलती हैं और फसल को खूब ताकत पहुँचाती हैं।

इसका अर्थ यह हुआ कि सभी दृष्टियों से इन मार्गों का पुख्ता और आबाद रहना इष्ट भी है और अनिवार्य भी।

४८. कुदरत की करामात यानी श्वास-मार्ग बनाने का उसका तरीका

ऐसे मार्गों के गठन के लिए कुदरत ने एक और अजीब तरीका अख्तियार किया है। जमीन के भीतरी कीड़े-कीटाणुओं की देह में उसने एक लसीला पदार्थ रख दिया है, जो उन कीड़े-कीटाणुओं के मरने पर उस मिट्टी मे ही मिल जाता है और उस मिट्टी की

धूलि के अनेक सूक्ष्मतम परमाणुओं को आपस में चिपकाकर. उनको वह कुछ बड़े बड़े संयुक्त परमाणुओं के रूप में गठित कर देता है। इन संयुक्त परमाणुओं के बीच में जो सूक्ष्म अन्तर छूट जाता है, वही अन्तर उपर्युक्त प्राणवायु के आने-जाने का मार्ग बन जाता है। इन अन्तरों की चौड़ाई एक महीनतम बाल जितनी रहती है और इसीलिए उनको "केशिका-मार्ग" कहते हैं। सारी जमीन में ऐसे मार्गों का एक जाल-सा फैला रहता है। इसलिए उस सारे मार्ग-समूह को, "केशिका-जाल" कहते हैं। अंग्रेजी में उसका नाम है : Capillary system. अनार और नारियल के जैसे बड़े-बड़े फलों के टाल (ढेर) की कल्पना करें, तो तुरन्त समझ में आ जावेगा कि उनके बीच-बीच में जिस तरह अन्तर छूटता है, ठीक उसी तरह छोटे-बड़े सभी पदार्थों के टाल के बीच-बीच में भी उनकी छुटाई-बड़ाई के हिसाब से अन्तर छूटता है।

४९. इस तरह, पेड़-पौधों की सोरों को श्वास लेने के लिए, उनकी सोरों को फैलने के लिए और उनके पोषणार्थ जीवनप्रद खुराक का बनना शक्य करने के लिए, जमीन के अंदर एक विशाल केशिका-जाल जमा देने का श्रेय भी इन्हीं सूक्ष्म कीटाणुओं को है।

५०. ये कीटाणु साल भर में कई बार जन्मते-मरते हैं। इसलिए उपर्युक्त केशिका-जाल को जमने में तीव्र गति भी मिल जाती है।

५१. इस गति का आधार उस-उस जमीन की कीटाणु-सृष्टि की घनता पर निर्भर करता है। किसान यदि चाहे, तो वह इन कीटाणुओं की खुराक-रूप मिश्र-खाद* को यथेष्ट मात्रा में पाटकर

* इस बारे में विस्तृत जानकारी अगले प्रकरणों में दी जायगी।

उनकी सघनता को चाहे जितनी बढ़ा सकता है और उपर्युक्त सभी कार्यों को तीव्र बनाकर अपनी जमीन से आज की अपेक्षा अनेक गुना अधिक फायदा उठा सकता है।

जमीन के अन्दर जल-संचार

नैसर्गिक यंत्र-प्रणाली

५२. पेड-पौधों के जीवन के लिए प्राणवायु का मिलना जिस तरह अत्यावश्यक है, ठीक उसी तरह पानी का मिलना भी। मगर पानी को अधिकांश पेड़-पौधे इस तरह चाहते हैं कि वह न तो उनकी जड़ों के पास लगा ही रहे, और न वह एकदम सूख ही जाय। वर्षा का पानी जमीन के उदर में जल्द-से-जल्द और अधिक-से-अधिक मात्रा में उतर भी जाना चाहिए और पेड़-पौधों की सोरें उसे जैसे-जैसे खींचती जायँ, वैसे-वैसे वह अपने-आप ऊपर की ओर उठते भी रहना चाहिए।

५३. ग्रीष्मकाल मे कुँओं का पानी वीसों हाथ नीचे उतर जाने पर भी जो छोटे-छोटे पौधे जिंदा रहते हैं, उसकी वजह यही है कि पानी के लिए कुदरत ने उपर्युक्त व्यवस्था कर रखी है और वह व्यवस्था 'केशिका-जाल' ही है।

५४. ऊपर के पानी को नीचे की ओर, और नीचे के पानी को ऊपर की ओर वगैर किसी यंत्र-शक्ति की मदद के खींच लेने की ताकत कुदरत ने केशिका-मार्गों को दे रखी है। वैज्ञानिक परिभाषा में इस शक्ति को "केशाकर्षण" (capillary attraction) कहते हैं। इसी शक्ति के कारण पानी का इन्तजाम होता है और इसीके कारण दुनिया भर का वनस्पति-जीवन शक्य हुआ है। इस जाल में न केवल पानी को नीचे-ऊपर लाने-ले जाने की ताकत है, बल्कि लम्बे अरसे तक उसे सँभाल रखने की ताकत भी इसमें है।

५५. जहाँ-जहाँ इस जाल का जमाव परिपूर्ण है, वे जमीनें पानी को खूब सोख लेती हैं और जहाँ-जहाँ उसका फैलाव कम है, वे जमीनें पानी को कम सोख पाती हैं। सघन-वन-प्रदेशों में कीटाणु-सृष्टि के लिए पत्तों की खुराक यथेष्ट मात्रा में रहती है, जिससे उनकी बदौलत उन जमीनों का केशिका-जाल भी खूब सघन जमा रहता है; जब कि गृहस्थों की जोत-कोड़वाली जमीनों में वह खुराक नाम-मात्र की रहती है, जिससे उन जमीनों का केशिका-जाल भी अत्यन्त कमजोर रहता है। इसलिए जोत-कोड़वाली जमीनें जहाँ मुश्किल से दस-बारह इंच पानी सोख सकती हैं, वहाँ सघन जंगलों की जमीनें आसानी से तीस-तीस, बत्तीस-बत्तीस इंच पानी को सोख लेती हैं।

५६. चूँकि सोखे हुए पानी को एक लम्बे अरसे तक वे पकड़ भी रख सकती हैं, सघन जंगलोंवाले पहाड़ों का पानी नीचे की ओर एकदम न बहकर आहिस्ते से चू-चूकर नीचे उतरता रहता है, जिससे ऐसे पहाड़ों पर से उद्गम लेनेवाली नदियाँ बिना सूखे सतत साल भर बहती रहती हैं और अपने मार्ग के प्रदेश के जलाशयों के पानी की सतह को भी ऊँचा उठाये रखती हैं एवं उस सारे प्रदेश को हरा-भरा और पुष्ट भी बनाये रखती हैं। जिन पहाड़ों पर के जंगल कट गये हैं, उन पहाड़ों पर से उतरनेवाली नदियाँ एकदम धँसकर नीचे की ओर उतरती हैं और अपने पट (river-bed) के इर्द-गिर्दवाले प्रदेश को धो-धोकर, अपने साथ बहाकर ले जाती हैं और चंद रोज के बाद फिर सूखी-ही-सूखी रह जाती हैं। ऐसी नदियाँ अपने प्रदेश को फायदा तो कम पहुँचाती हैं, नुकसान जरूर काफी कर जाती हैं।

केशिका-जाल का महत्त्व

५७. इन सभी बातों पर से पाठक यह समझ सकते हैं कि नाचीज-सी मालूम होनेवाली इस केशिका-जाल की कारगुजारी

भी वनस्पति-जीवन में और उसके जरिये सारी सजीव-सृष्टि के जीवन में भी, कितना अधिक महत्त्व रखती है और इसको बनाने का श्रेय भी उपर्युक्त सूक्ष्म कीटाणुओं को ही है।

५८. कृषि-जीवन के प्रत्यक्ष व्यवहार में भी देखा गया है कि ये दोनों संस्थाएँ (केशिका-जाल और सूक्ष्म कीटाणु) खेती-बारी के उद्योग पर अपना प्रभाव काफी अधिक रखती हैं। प्रयोग के लिए :

(१) जिस खेत में सूक्ष्म कीटाणुओं की खुराक-रूप मिश्र-खाद को पर्याप्त मात्रा में पाटा गया, उस खेत में अल्पवृष्टि के समय पुरानी उपज के एक मन धान की जगह, बावजूद अल्पवृष्टि के, ठीक पौने दो मन धान पैदा हुआ, जब कि उसी साल गाँव के शेष खेतों में एक मन की जगह केवल दस और पंद्रह सेर धान पैदा हुआ था। इससे केशिका-जाल की जल-संग्राहक-शक्ति का प्रत्यक्ष परिचय मिलता है।

(२) दूसरे एक प्रयोग में कि जब वर्षा ठीक से हुई थी, खेत के जिस हिस्से में एक-बराबर-आधा इंच मिश्र-खाद पाटी गयी, उसकी उपज बेखादवाले हिस्से से ठीक चार गुनी हुई और जिस हिस्से में, एक-बराबर—डेढ़ इंच मिश्र-खाद पाटी गयी, उसकी उपज ठीक सात गुनी हुई। इन अनुभवों पर से पता चलता है कि सेन्द्रिय खादों पर निभनेवाले सूक्ष्म कीटाणु अपने विविध कर्तव्य किस अनोखे ढंग से और कितनी शीघ्रता के साथ अदा करते हैं।

५९. प्रयोग करनेवालों का यह भी अनुभव है कि मिश्र-खाद पर्याप्त मात्रा में पाटने से फसलों को पानी की आवश्यकता एक-तिहाई के हिसाब से घट जाती है। यानी तीन पटवन का काम दो ही पटवन से हो जाता है।

६०. विवेचन का सार

१. बगैर कीटाणु सृष्टि के पेड़-पौधों को सोरों को प्राणवायु का मिलना अशक्य है;

२. नियमित रूप से जल का मिलना भी अशक्य ही है, और साथ-साथ जल का जमीन में पैठना भी अशक्य है;

३. उनके लिए जमीन में पोषक-तत्त्वों का बनना अशक्य है;

४. सोरों को फैलने के लिए जमीन में मार्ग मिलना भी अशक्य है, और साथ-साथ मिट्टी और जमीन का बनना भी अशक्य है।

६१. संक्षेप में कहा जाय तो कीटाणुओं की संस्था, कुदरत की उन चन्द व्यवस्थाओं में से है, जिनको कुदरत ने अपनी सृष्टि-रचना की नींव में रखा है, जो वनस्पति-सृष्टि के लिए और सारी सजीव-सृष्टि के लिए मूलाधार-सी है और जिनके बिना उपर्युक्त वनस्पति-जीवन या और कोई भी जीवन शक्य नहीं है।

६२. जब कि इन कीटाणुओं की ठीक से हिफाजत करते रहने से उपर्युक्त सभी कार्य सहज बन जाते हैं और साथ-साथ पानी पाटने की आवश्यकता भी घटती है; बारहमासी नदियों के रूप में और उनसे निकलनेवाली नहरों के रूप में यथेष्ट पानी का कायमी प्रबन्ध भी सहज ही शक्य हो जाता है एवं फसलों की मात्रा को भी यथेष्ट पैमाने तक बढाना संभव हो जाता है।

❀ ❀ ❀

खुलासा :

६३. इस लेख-माला में "सोर व सोरें" ये शब्द पेड़-पौधों के केश के समान महीनतम मूलों के अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। पेड़-पौधे जमीन से पोषक तत्त्व और साँस लेने की क्रियाएँ इन्हीं महीनतम सोरों के जरिये करते हैं और मोटी-मोटी जड़ें इन महीनतम मूलों को दूर-दूर तक फैलाने के काम के लिए ही होती हैं।

"सेन्द्रिय" और "रासायनिक" विचार-धाराओं के जन्म और वृत्तान्त

रासायनिक विचार-धारा का जन्म और प्रगति

६४. कोयला-तत्त्व के सिलसिले में हमने देखा कि कृषि-वैज्ञानिकों मे दो मत हैं। यहाँ इन दोनों विचार-धाराओं की हम विशेष चर्चा करेंगे।

६५. पेड़-पौधों को जलाने से जो राख बचती है, उसके पृथक्करण पर से आधुनिक कृषि-विज्ञान का जन्म हुआ है। राख में मूलतत्त्व तो अनेकानेक पाये गये, किन्तु एक-एक को छाँटकर जाँचने के बाद वैज्ञानिक इस निर्णय पर पहुँचे कि खाद के रूप में अनिवार्य तौर पर पाटने योग्य तत्त्व केवल तीन ही हैं: 'नत्रजन', 'फॉस्फरस' और 'पोटैशियम'। इसलिए इन तीन नामों के प्रथमाक्षरों से उन लोगों ने अपनी विचार-धारा का नाम N. P. K. Theory (N. P. K. सिद्धान्त) रखा।

६६. इस विचार-धारा की प्रगति के प्रधान कारण निम्न प्रकार थे :

(१) उनके विविध खाद कारखानों में बन सकते थे और जितने चाहो, मिल सकते थे।

(२) तौल के रूप में उनकी आवश्यकता बहुत कम परिमाण में रहती थी और लाने-ले जाने में भी आसानी होती थी। खर्च भी कम लगता था।

(३) उनके पाटने से फसल भी कई गुना अधिक पैदा होती थी।

६७. उस समय तक दूसरी कोई विचार-धारा ठीक तरह से संगठित भी नहीं हुई थी। इसलिए इस N. P. K. सिद्धान्त-वाले लोग हर तरह से सभी दिशाओं में बगैर रोक-टोक के तेजी से आगे बढ सके और उनकी पहुँच अनेक राष्ट्रों के अनेकानेक क्षेत्रों में बड़ी गहराई तक जम गयी। जैसे :

(१) सरकारों ने इस विचारधारा को मान्य किया और उसका साहित्य भी इस सिलसिले में बहुत-कुछ छप गया। उसके विद्यालय और प्रयोग-केन्द्र भी देश-देश में कायम होकर चलने लगे। हजारों विशेषज्ञ शिक्षक बने, लाखों विद्यार्थी सीखने लगे और लाखों कर्मचारी भी काम करने लगे।

(२) खाद बनानेवाले अनेक कारखाने कायम हो गये। करोड़ों रुपये की खाद हर साल बनने और बिकने लगी।

(३) वाष्प-संचालित उद्योगों का छाँट (by-products) से खाद-लायक तरह-तरह की चीजें मिलने लगीं। परिणामतः ये खाद और सस्ती बनीं एवं खूब फैलीं।

बड़े-बड़े फार्मों का जन्म

६८. अपनी सफलताओं पर मुश्ताक होकर इन वैज्ञानिकों ने गोबर, खेती-बारी की काट-छाँट आदि खाद की पुरानी चीजों को गंदी, खर्चीली और गैरजरूरी करार दिया, जिससे खेती-बारी के साथ-साथ पशुओं के पोषण का जो आम रवैया था, वह भी धीरे-धीरे बिलकुल मिट गया और पयार, कड़बी आदि खेती-बारी की काट-छाँट को जला-जलाकर किसान लोग राख बनाने लगे। उस जमाने के वाष्प-संचालित उद्योगों के लिए यह तरीका अनुकूल भी था। पशुओं से छुटकारा मिला और यन्त्रों को चलाने व सँभालने के लिए समय और शक्ति,

दोनों बच गये। अब छोटे-छोटे खेत मिट गये और हजारों एकड़ के बड़े-बड़े "फारम" बनने लगे। फ्रान्स का एक-एक फारम औसतन दो-दो हजार एकड़ का बना, जर्मनी का आठ-आठ हजार एकड़ का और अमेरिका एवं अफ्रीका के फारम तो और भी अधिक बड़े बने। खेती-बारी के क्षेत्र में प्रगतिशील पाश्चात्यों का सारा-का-सारा ढाँचा ही बदल गया। मगर तब तक इन खादों के दोष भी अच्छी तरह प्रकट हो गये थे। फायदों की तुलना में वे दोष अधिक ही थे, फिर भी पहले महायुद्ध के समय में जब युद्धरत मुल्क, पनडुब्बी-विनाशिकाओं (Sub-marines) के कारण अन्न-संकट में फँसे, तब स्वयं उन सरकारों ने इन खादों के प्रचार का काम अपने हाथों में ले लिया और युद्ध के बाद उनके बारूद बनाने-वाले विशाल कारखानों का जब कोई उपयोग नहीं रह गया, तब उन कारखानों से वे नत्रजन की खाद, "सल्फेट अमोनिया" बनाने लगे। इस तरह वे सरकारें भी इन खादों के उत्पादन के धंधे में बुरी तरह से उलझ गयीं और उन खादों की पकड़ राष्ट्र-जीवन पर और भी मजबूत हो गयी। देश भर का गृहस्थ-वर्ग, व्यापारी-वर्ग, कारखानदारों का उत्पादक-वर्ग, शिक्षा-विभाग, अन्वेषण-विभाग और सरकारें भी, इस उद्योग के साथ बड़ी घनिष्ठता से उलझ गयीं। सारे देश की अर्थव्यवस्था ही इन खादों के जरिये से बेहद बढ़ाये हुए कृषि-उत्पादन की आमदनी के मान (Standard) पर जम गयी। यद्यपि इन खादों के कारण हानि भी बेहद होने लगी थी, फिर भी परिस्थिति यह हो गयी थी कि न इन्हें रखते ही बनता था, न छोड़ते ही। क्योंकि तब तक तीव्र उत्पादन का दूसरा कोई तरीका वैज्ञानिकों के हाथ नहीं लगा था।

नया उपाय

६९. मगर संयोग से कुछ परोपकारी वैज्ञानिकों को इसका भी इलाज सूझ गया। इनमें सर्वप्रमुख श्री अल्बर्ट हॉवर्ड नामक

महापुरुष थे। उनको दिखाई दिया कि पेड़-पौधे सजीव हैं और उनके मूलाधार-रूप जमीन के कीड़े-कीटाणु भी सजीव ही हैं और सजीव संस्थाओं का जीवन कारखानों में बने रासायनिक खुराक पर नहीं चलाया जा सकता। भारत और चीन की खेती और खादों का उन्होंने अभ्यास किया और प्रयोग भी किये। अन्त मे वे इस नतीजे पर पहुँचे कि पुराने ढंग के खादों से सभी तरह के खतरों से मुक्त भी रहा जा सकता है और उत्पादन भी रासायनिक खादों के जितना अवश्य ही बढाया जा सकता है।

७०. इस तरह जब दूसरी विचार-धारा जीवन-क्षेत्र मे आयी, तब इन दोनों विचार-धाराओं को नये और अर्थ-सूचक नाम इस प्रकार मिले :

'N. P. K.' विचार-धारावालों को "रासायनिक विचार-धारा" नाम मिला; क्योंकि उनकी सब प्रधान और अधिकांश खादें गंधक के तेजाब के जैसे कड़े रसायनों के संयोग से ही बनायी जाती थीं, जब कि श्री अल्बर्ट हॉवर्डवाली नयी विचार-धारा को, "सेंद्रिय विचार-धारा" नाम मिला; क्योंकि उनकी खादें सब-की-सब, सजीव सृष्टि के अवशेषों मे से ही थीं: जैसे कि खेती-बारी की काट-छॉट, खलियॉ, सजीव प्राणियों का मल-मूत्र और उनके देहावशेष आदि।

७१. रासायनिकों का प्रथम शास्त्रीय लेख सन् १८४० मे छपा था, जब कि इस नयी विचार-धारा का प्रथम शास्त्रीय लेख सन् १९३० में छपा। इस तरह इन दोनों के जन्म-साल में नब्बे साल का अंतर है।

७२. यह नयी विचार-धारा न फैलने पाये, इसलिए शुरू मे रासायनिकों ने उसका खूब मजाक उड़ाया। मगर कृषि-पत्रों मे उसकी चर्चा शुरू हो गयी थी। रासायनिक खादों के लाखों मुन-

भोगियों में काफी लोग ऐसे भी थे, जिन्होंने श्री अल्वर्ट महोदय के सुझावों को आजमाया और उनसे जो आशातीत फायदा हुआ, उसका वर्णन भी कृषि-पत्रों में छपा। देखते-देखते बात दुनिया भर में फैल गयी। जगह-जगह से श्री अल्वर्ट महोदय को आमंत्रण मिलने लगे। उन्होंने अपनी सरकारी नौकरी छोड़ दी और निजी खर्च पर वे इस विचार-धारा का प्रचार करने लगे। चन्द वर्षों में भारत, अफ्रीका, ऑस्ट्रेलिया, यूरोप और अमेरिका में भी लाखों टन मिश्र (Compost)-खाद प्रति साल बनने लगी। मगर तब तक रासायनिक खादों की सालाना उत्पत्ति और बिक्री अस्सी अरब पौंड तक पहुँच चुकी थी, जिसकी कीमत आज की दरों से अठारह अरब रुपये होती है। फिर भी, सन् १९३७ में अमेरिका की सरकार ने सल्फेट अमोनिया (नत्रजन की रासायनिक खाद, जो कि सबसे अधिक हानिकारक खादों में से एक है) के अनियन्त्रित उपयोग पर कुछ नियंत्रण रखा; क्योंकि ऐसा किये बगैर उसकी गुजर भी नहीं थी। उस साल तक अपनी जोत की कुल जमीन का ६१% हिस्सा (नाप से २५ करोड़ और ३० लाख एकड़), वह बरबाद करके छाँट चुका था और कृषकों को जंगलों की उतनी नयी जमीनें दे चुका था। फिर भी किसी राष्ट्र ने आज तक सरकारी तौर पर इस नयी विचार-धारा के व्यवस्थित प्रचार का आयोजन नहीं किया। उनके सबके सब कृषि-विशेषज्ञ पुरानी चीज को ही सीखे हुए हैं। इससे सेंद्रिय विचार-धारा का विकास भी जैसा होना चाहिए था, नहीं हो पाया। जितने प्रयोग होने चाहिए, नहीं हुए। उसका जो साहित्य छपा है, वह भी रासायनिकों की आलोचना करके ही रह गया है। उसके पाठ्य-ग्रंथ भी छपने बाकी ही हैं। मगर इतना जरूर हुआ है कि सभी सेंद्रिय खादों को "गंदी, महँगी और अनावश्यक" कहने की हिम्मत रासायनिकों में अब नहीं

रही है। इतना ही नहीं, इन खादों में सबसे अधिक आसान चीजें, जो खल्लियाँ और हरे खाद हैं, उनका उपयोग भी वे आम तौर पर और नियमित रूप से करने लगे हैं और निन्दा को दिशा में अब वे केवल इतना ही कहते हैं कि "सेंद्रिय खादें अच्छी तो हैं, पर साथ-ही-साथ हमारी खादों को भी कुछ मात्रा में लिये वगैर अधिक-से-अधिक फसल नहीं उपजायी जा सकती।"

७३. अधिक-से-अधिक मात्रा में सेंद्रिय खादों को लगाकर कुछ-कुछ मात्रा में रासायनिक खादों को भी रहने देने का परिणाम क्या होगा, यह देखने के पहले, रासायनिक खादों में दोष कौन-कौन से हैं, यह हम प्रथम देखें :

(१) रासायनिक खाद देने से फसल का स्वाद उतर जाता है।

(२) वैसे नाज आदि पदार्थ खानेवालों को चर्म रोगों से लेकर दूसरी भिन्न-भिन्न बीमारियाँ भी घेर लेती हैं।

(३) उससे पैदा किये हुए घास, पयार, कड़वी आदि चारे (fodders) भी बेस्वाद हो जाते हैं।

(४) उनको खानेवाले पशुओं में भी तरह-तरह की बीमारियाँ फैलती हैं। यदि उन्हें अपने मन से चरने के लिए छोड़ दिया जाय, तो लहलहाती हुई ऐसी फसलों को वे छूते तक नहीं और बगल के कमजोर खेतों मे बिखरे तिनकों को नोचते फिरना वे अधिक पसन्द करते हैं।

(५) उसके फल, तरकारी और नाज भी कम टिकते हैं और छप्पर छाने मे लगायी हुई उनकी कड़वी तक, आधे समय तक ही टिकती है।

(६) कुछ साल तक, इन खादों को चालू रखने पर फसलों को भी तरह-तरह की बीमारियाँ घेरने लगती हैं, जिनकी मात्रा और विविधता भी रोज-ब-रोज बढ़ती ही जाती है।

(७) इन खादों के पाटने की मात्रा को भी प्रतिवर्ष वढ़ाते जाना पड़ता है और फिर भी फसल की मात्रा दिन-पर-दिन घटती ही जाती है, जब कि उनके खर्च का मान वढ़ता ही जाता है।

(८) आगे चलकर उन खादों से पैदा किये हुए वीजों का अंकुरित होना वंद हो जाता है, जिससे उन खादों को टिकानेवालों को कायम के लिए हर तरह के वीजों की नयी-नयी नस्लें वनाते रहना पड़ता है। (गेहूँ और ईख की हजारों नस्लें वे वना चुके हैं।) और फिर भी,

(९) अंत में वे जमीनें ही किसी पौधे को उगाना वन्द कर देती हैं।

७४. इस तरह १९३७ तक अमेरिका में जब २५ करोड़ ३० लाख एकड़ जमीन छँटी थी, तव अफ्रीका में उससे कई गुना अधिक जमीन छँटी थी और आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड आदि मुल्कों में भी अत्यधिक हानियाँ हुई थीं।

७५. परन्तु इस हानि को समझने के लिए रासायनिक विचार-धारावाले जब सिर पचाकर हार गये, तब श्री अल्वर्ट महोदय को उन्होंने वुलाया। अल्वर्ट महोदय ने उन्हें वताया कि :

(१) रासायनिक खादें खेत में पटते ही वे खेत के उन कीड़े-कीटाणुओं को मार देती हैं, जिनका पेड़ पौधों के जीवन के साथ अतीव घनिष्ट संवंध होता है। (उन खादों में भी नत्रजनवाला "सल्फेट अमोनिया" और फॉस्फरसवाला "वेसिक स्लैग" तो खेतों को कीड़े-कीटाणुओं से विलकुल साफ ही कर देता है);

(२) साथ-साथ, खेतों का सेंद्रिय पदार्थ, जो कीड़े-कीटाणुओं की खुराक है और जो करीव २ सभी जमीनों में, शेप पोपक तत्त्वों की तरह, कई पुश्तों तक चलने लायक मात्रा में मौजूद होता है, उसे भी वे खादें तीव्र गति से खपाने लगती हैं।

(३) उसके खतम होने पर वे मिट्टी के संयुक्त परमाणुओं को बनानेवाले लसीले पदार्थ को खतम कर देती हैं।

(४) यह पदार्थ जब खतम होता रहता है, तब जमीन आखिरी साँस लेने लगती है और इसके खतम होते ही आधुनिक पाश्चात्य परिभाषा के अनुसार "वह जमीन मर जाती है—the land is dead," यानी तब न वह साँस ले सकती है, न पानी को अपने भीतर सोख सकती है और न हरियाली के एक तिनके को ही उगा सकती है।

(५) सेंद्रिय पदार्थ के खतम होने से कीटाणु-सृष्टि की खुराक खतम होती है और खुराक के खतम होने के साथ-साथ कीटाणु-सृष्टि भी खतम होती है और नये लसीले पदार्थ का पैदा होना भी बन्द होता है;

(६) लसीले पदार्थ के खतम होने से, जमीन का 'केशिका-जाल' टूट जाता है, जब कि कीड़े-कीटाणु और केशिका-जाल तो सारे वनस्पति-जीवन के लिए मूलाधार हैं। इसलिए इन दो संस्थाओं के मिट जाने पर जमीन वास्तव में "मर जाती है।"

७६. जमीनें ज्यों-ज्यों नाश की ओर बढ़ती हैं, त्यों-त्यों उन पर उगनेवाले Weeds (घास-पात) की किस्में किस तरह बदलती हैं, यह भी उन्होंने बताया, जिससे जमीन की क्रमशः बिगड़ती हालत को आसानी के साथ जाना जा सके।

७७. अंत में कृत्रिम उपायों से वैसी जमीन से फॉल लियारा, उसे वापस उपजाऊ बनाने का तरीका भी उन्होंने बता दिया। और दो बातें और भी समझायीं कि :

(१) रासायनिक खादों से जो फसलें बढ़ती हैं, उनका मुख्य प्रधान कारण यह है कि वे खादें जमीन के सेंद्रिय पदार्थों को तेजी के साथ विघटित करके पेड़-पौधों को खिला देने का काम भी करती हैं।

(२) सेंद्रिय पदार्थों का नितांत त्याग करने पर भी उनकी जमीनें इतने लम्बे समय तक टिकीं, उसके दो कारण ये थे :

(क) हिंद और चीन-जापान की तुलना में अमेरिका की जमीनें बिलकुल कुमारिकाएँ (virgin soils) थीं और घने जंगलों के सैकड़ों साल के द्रवित डाल-पात से भरपूर थीं।

(ख) फसलों की जड़ों के रूप में भी काफी सेंद्रिय पदार्थ उनको नियमित रूप से मिलते थे।

७८. इन दो कारणों के अभाव में वे जमीनें और भी कम समय में बरबाद होकर छँट जातीं।

७९. जमीनों के इस प्रकार के अंतिम नाश के लिए अंदाजन चालीस-पचास साल लगते होंगे। मगर खलियों के रूप में और हरे खादों के रूप में सेंद्रिय पदार्थ जमीन को नियमित रूप से देते रहने पर और साथ-साथ रासायनिक खादों की मात्रा को भी घटा देने पर, ऊपर बतायी हुई नवधा बाधाएँ खेती-बारी को लागू होने में कितना समय लगता होगा, उसका अंदाज लगाने का अवसर अभी नहीं आया है।

८०. किन्तु उस तरीके से भी कौन-कौन से खतरे हमारे मार्ग में रहेंगे, उसकी जानकारी इस प्रकार उपलब्ध है :

(१) पानी का प्रबंध ठीक न रहने पर रासायनिक खादें एक ही साल में हानि पहुँचाती हैं;

(२) उनके उपयोग के ढंग या मात्रा में कोई गलती हो जाय, तो भी फसल को वे तुरन्त ही हानि पहुँचाती हैं;

(३) उस हालत मे उनका उपयोग करनेवाले व्यक्ति के स्वास्थ्य पर भी खतरा रहता है।

(४) यह बात भी जानने को मिली है कि जापान में, जहाँ कि ९८% जमीन के लिए पानी का प्रबन्ध बहुत अच्छा है, जहाँ किसानों के लिए मार्गदर्शक विशेषज्ञों का प्रबन्ध भी आदर्श है,

जहाँ के लोग सेंद्रिय पदार्थ की किसी चीज को जरा भी बरबाद न होने देकर, उनका पूरा-पूरा उपयोग करते हैं और वैसा करने में सारी दुनिया के किसी भी राष्ट्र से वे बहुत आगे बढ़े हुए हैं: सरकारी तौर पर रासायनिक खादों के अनियन्त्रित उपयोग पर और विशेषतया "सल्फेट अमोनिया" के अनियन्त्रित उपयोग पर कुछ नियन्त्रण रखना पड़ा है।

(५) इन रासायनिक खादों के बारे में सबसे बुरी बात तो यह है कि वे ग्रामोद्योग, स्वावलंबन और स्वदेशी जैसे मौलिक सिद्धान्तों की जड़ पर ही कुठाराघात करते हैं और सारी मानव-जाति के जीवन के मूलोद्योग को ही पूँजीवाद और केन्द्रीकरण के निर्दय हाथों में सुपुर्द कर देते हैं। कृषकों के बीच इन खादों को चालू करना तो आसान है, मगर बाद में उनसे उनको छुड़ाना अत्यन्त मुश्किल होगा। सभी दिशाओं में सुसमर्थ कहलानेवाले अमेरिका जैसे मुल्कों को भी मथते-मथते बीसों साल बीत चुके, मगर अब भी वे इसकी बिगडी बाजी नहीं सुधार सके हैं। ये खाद इतने अधिक हानिकर होने पर भी अब तक क्यों टिके हुए हैं, इसकी कारण-मीमांसा हम ऊपर कर ही आये हैं।

८१. प्रश्न यह है कि तीव्र खेती के लिए इन खादों को लेना अनिवार्य भी है क्या? सेंद्रिय विचार-धारा का कहना है कि वह कतई आवश्यक नहीं है। बगैर इन खादों के, उनसे भी अधिक तीव्र खेती किस तरह होती है, सो बात हम आगे के प्रकरणों में देखेंगे।

卐卐卐

रहती हैं और इसी पानी को पाकर सारी दुनिया को कुओं से पानी मिलता रहता है।

८८. सूर्यताप समुद्रों से पानी सोखते समय उसको सभी अनिष्ट क्षारों से मुक्त और परिशुद्ध बना लेता है और वर्षा के रूप में गिराते समय, वह उसे वायुमंडल के कार्बोदवायु, प्राणवायु और नत्रजनवायु आदि पोषक तत्त्वों से परिपूरित करके इतना पुष्ट बना लेता है कि फसलें पटवन के चार पानी से जितनी पुष्ट नहीं हो पातीं, उतनी वर्षा के एक पानी से ही पुष्ट हो जाती हैं।

८९. अन्वेषकों ने नत्रजन का तो नाप भी निकाला है कि जमीन को वर्षा के पानी के साथ-साथ, प्रति एकड़ तीन से लेकर तेरह रतल तक की मात्रा मे वह हर साल मिलता रहता है।

कीड़े-कीटाणुओं के लिए सूर्यताप

९०. अब वर्षा के इस पानी को जमीन द्वारा सोखने का इन्तजाम करनेवाले कीड़े-कीटाणुओं के जीवन को टिकाने के लिए भी सूर्यताप की जरूरत रहती है। इस ताप के एक निश्चित हद से नीचे उतर जाने पर उनका जीवन अशक्य बन जाता है, जिस तरह कि ध्रुव-प्रदेशों के अत्यन्त ठंढे प्रदेशों में होता है।

फसलों को फलाने के लिए सूर्यताप

९१. प्रत्यक्ष व्यवहार में यह भी अनुभव हुए हैं कि पेड़-पौधों को फलाने के लिए भी सूर्यताप की जरूरत है ही, क्योंकि :

(१) जो पेड़-पौधे अन्य वृक्षों की छाँह में पड़ जाते हैं, वे बढ़ते भी कम हैं और फलते भी कम हैं।

(२) आम वगैरह फल-वृक्षों की वे डाँड़ियाँ माँजर (फूल) देर से पकड़ती हैं, जिनको प्रभात-काल का सूर्यताप नहीं मिलता।

(३) पश्चिम बगल से छप्पर पर लतराई हुई लत्तियाँ तब तक ठीक से फल नहीं धरतीं, जब तक वे प्रभात-काल के सूर्यताप-युक्त पूर्व पाँख तक नहीं पहुँचतीं; और—

(४) जो फसलें अतीव घनी पड़ जाती हैं, वे फलती तक नहीं हैं, क्योंकि उनकी पोषक सामग्री, सूर्यताप उस भीड में कम मिल सकने के कारण उन पौधों की फल धरने की जगह तक (फुनगियों तक) बढ़ नहीं पाती और तनों मे ही रुक जाती है।

सूर्यताप की कामगिरी का संक्षेप

९२. संक्षेप में, पेड़-पौधों के जीवन का कोई पहलू ऐसा नहीं है, जिसका काम बगैर सूर्यताप के चल सके। उनके सभी पोषक तत्त्व, सेंद्रिय रहने पर भी मृतवत् हैं और जड़ हैं। सूयताप ही उनको चेतना देता है और गतिमान बनाता है। शेष पोषक तत्त्व पेड़-पौधों की देहों को जब गढते हैं, तब सूर्यताप उन सबमें प्राणों को पूरता है। यही सूर्यताप के महत्त्व का संक्षेप है। फ़फ़फ़

: ७ :

सेन्द्रिय खादों की व्यावहारिक बातें

९३. अब तक हमने पेड़-पौधों के पोपक-तत्त्वों का तात्त्विक निरीक्षण किया। अब हम उनके व्यावहारिक उपयोग के तरीकों को भी देखेंगे।

९४. सेन्द्रिय विचार-धारा के अनुसार खाद के संबंध में कृषक को करने के प्रधान कार्य निम्नलिखित होते हैं :

(१) खेती-बारी की काट-छाँट को या अन्य सजीव सृष्टि के मल-मूत्र को या उनके मृतावशेपों को जरा भी जाया न होने दिया जाय और उनको खाद के रूप में काम में लिया जाय।

(२) जमीन के हरएक हिस्से में द्विदलों की एकाध फसल हर साल अवश्य ली जाय और

(३) थोड़ा-सा हरा खाद भी जमीन के हरएक टुकड़े को अवश्य ही हर साल दिया जाय।

९५. इनमें से कृपक के हाथ लगने की संभावनावाले पहली कलम के पदार्थ ये हैं :

(१) (क) खेती-बारी की काट-छाँट, (ख) राख, (ग और घ) मनुष्यों और पशुओं का मल-मूत्र, (च) मृत पशुओं के मांसादि और (छ) उनकी हड्डियाँ।

९६. और दूसरी कलमवाली (२) द्विदलों की फसल से भारतीय किसान सुपरिचित हैं और उसका अमल भी वे आम तौर पर करते हैं।

९७. (३) हाँ, हरे खादों के बारे में कुछ विशेष जानकारी देना जरूरी मालूम होता है।

खेती-बारी की काट-छाँट के गुण और उपयोग

९८. उपर्युक्त सभी पदार्थों में गुण की हैसियत से खेती-बारी की काट-छाँट सर्वप्रधान है, क्योंकि वनस्पति-जीवन तो ह्यूमस बनानेवाले सूक्ष्म कीटाणुओं की प्रधान खुराक वही है।

९९. ध्यान देने पर सहज में दिखाई देगा कि फसलें जहाँ कहीं काफी अच्छी हो रही हैं, वहाँ वे चाहे संयोगवश हों, चाहे समझदारीपूर्वक, यह खुराक खेतों को पर्याप्त मात्रा में मिलती ही रहती है। मिसाल के तौर पर : (१) आसाम जैसे प्रदेशों में, जहाँ कि गोचर जमीनें और घास-पात माल-मवेशियों के लिए पर्याप्त रूप में सुलभ हैं, किसान-वर्ग धान जैसी फसलों को जड़ से न काटकर केवल उनकी "बाल" को ही काट लेते हैं और उनके शेष डंठलों को खेतों में ही सड़ने को छोड़ देते हैं। अनुभवियों का कहना है कि वहाँ की फसलें बगैर किसी खास सेवा, खबरदारी और खाद के यहाँ की अपेक्षा कहीं अच्छी होती हैं, और (२) दक्षिण की ओर देखें, तो आंध्र के गोदावरी और कृष्णा जिले में भी जमीनों को खाद के रूप में पयार के मिलने का और फसलों की मात्रा का यही हाल है।

१००. इन दोनों प्रदेशों की यह कार्रवाई, संयोगवश चलती हुई दिखाई देती है; जब कि जापानी किसान संयोग के अलावा कुछ समझदारी से भी काम लेता हुआ दिखाई देता है। वहाँ के ६०% किसान अपनी जमीनों को जोतने के लिए बैल नहीं रखते और शेष ४०% किसानों के पास केवल एक ही एक बैल होता है। इससे उस मुल्क में पयार काफी तादाद में बच जाती है, जिसे वे मिश्र-खाद के रूप में परिवर्तित करके खेतों में पाटते हैं।

१०१. इसके अलावा वे न केवल शेष काट-छाँट को ही हिफाजत

के साथ खाद के काम में ले लेते हैं, बल्कि साथ-साथ ऐसी काट-छाँट की मात्रा को यथाशक्य बढ़ा लेने के लिए वे खास-खास दरख्त भी लगाते हैं, जिनसे उनको खाद के लिए काफी पत्ते भी मिलते रहते हैं।

१०२. इनमें से धान की पयार को तो, पहली वर्षा के होते ही जोत करके मिट्टी में दबा देने से, वह रोपनी के समय तक में सड़ जाती है और इसके लिए खेतों में कुछ ही दिनों के लिए केवल थोड़े-से पानी का टिकना काफी होता है। कुट्टी काटकर पाटने से जोतकर उसे मिट्टी में दबा देने में सहूलियत रहती है और कुट्टी काटने की मेहनत से बचना हो तो फसल काटते सम केवल धान की "बालों" को काटकर डंठलों को जमीन में लगा रहने देना भी काफी होता है।

१०३. खेती-बारी की अन्य काट-छाँट बहुत जल्दी नहीं सड़ती। उसे पहले से सड़ाकर खेतों में पाटना होता है। सड़ाने की विधि 'मिश्र-खाद' प्रकरण में दी जावेगी। यहाँ पर केवल यह बता देना काफी है कि इन सब पदार्थों में रासायनिकों की मान्यतावाले नत्रजन, फॉस्फरस और पोटैशियम की मात्रा नाममात्र की रहती है, यानी एक-डेढ़ प्रतिशत से अधिक नहीं रहती। लेकिन इनका महत्त्व तो इनके कार्बोद्-पदार्थों की वजह से है, जो कि उपर्युक्त तीनों तत्त्वों को विघटित करनेवाले सूक्ष्म कीटाणुओं की अगणित फौज की प्रधान खुराक है।

१०४. इसके संबंध में जानने योग्य बात यह भी है कि द्विदल-वर्ग के डंठलों में नत्रजन की मात्रा "शाली" वर्ग के डंठलों की तुलना में अधिक रहती है। (जिन नाजों की दाल नहीं बनती, उनकी गिनती "शाली" वर्ग में होती है; जैसे चावल, गेहूँ, मकई, ज्वार, जौ वगैरह।)

राख के गुण और उसके उपयोग

१०५. अब उपर्युक्त सेन्द्रिय-खादों की फेहरिश्त में दूसरा नम्बर राख का आता है। यह चीज ऐसी है कि बगैर सड़ाये, यों ही पाटी जा सकती है। थोड़ा-सा पानी मिलने पर वह फौरन ही काम देने लगती है। उसका उपयोग पोषक रूप मे भी है और पेड़-पौधों को रोगों से और हानिकारक कीड़ों से बचाने-छुडाने के काम के लिए भी है।

१०६. लकड़ी की राख में पोषक तत्त्व "पोटैशियम" है। उसकी मात्रा दस से पंद्रह फी सैकड़ा तक रहती है। फुनगियों की राख में उसकी मात्रा अधिक रहती है और तनों की राख मे कम; क्योंकि पेड़-पौधों के क्षार उनकी नयी रचना के लिए बराबर फुनगियों की ओर विशेष रूप से जुटते रहते है।

१०७. पर गोबर की राख का हाल कुछ अलग ही है। पश्चिमी मुल्कों में तो वह बनती ही नहीं है। इस कारण उसका विश्लेषण कहीं किया हुआ मिलता नहीं है। उसके बारे में जो कुछ जानकारी हासिल है, वह इस प्रकार है:

(१) पशुओं की देह से मल-मूत्र के रूप में जो पोषक-तत्त्व विसर्जित होते हैं, उनके पोटैशियम-तत्त्व का करीब ९७% हिस्सा उनके मूत्र मे ही रहता है और वही हिस्सा अधिक-से-अधिक सुपच भी रहता है; क्योंकि वह हिस्सा गलकर द्रव-रूप मे परिवर्तित हुआ रहता है। शेष जो ३% हिस्सा बचता है, वह शरीर के विघटक रसों के बावजूद गला नहीं रहता और स्थूल-रूप में गोबर के साथ निकलता है।

(२) फॉस्फरस-तत्त्व सबका सब उनके गोबर में रहता है जब कि—

(३) नत्रजन का ३०% हिस्सा, जो कि दुष्पच होता है, वह उनके गोबर में निकलता है और ७०% सुपच हिस्सा गोमूत्र में निकलता रहता है।

१०८. (४) फॉस्फरस-तत्त्व सभी पदार्थों में ऐसे यौगिक रूप में रहता है कि जलाने पर भी वह नष्ट नहीं होता। मगर जमीन में के कार्बोद-वायु या कर्बुदाम्ल के योग से ही गलता है; जब कि—

(५) नत्रजन-तत्त्व गोहरों के (यानी उपलों के) जलने पर सबका सब उड़ गया होता है और गोबर की राख में कुछ भी बचा नहीं रहता।

इन तथ्यों का निचोड़ यह है कि गोबर की राख का उपयोग पोटैशियम-तत्त्व के लिए नही, फॉस्फरस-तत्त्व के लिए है। *

१०९. मानव-प्राणियों और मवेशियों के मल-मूत्र

इनमें पोषक-तत्त्वों की मात्रा इन प्राणियों की अलग-अलग उम्र में और अलग-अलग परिस्थितियों में अलग-अलग रहती है; जैसे कि :

(क) फुरसत में आराम से बैठे हुए या बड़े-बूढ़े मानव-प्राणी और पशु, अपनी खुराक के बहुत ही कम तत्त्वों को अपनी देह में गढ़ सकते हैं और उसके अधिकांश हिस्से को मल-मूत्र के रूप में विसर्जित करते हैं। इसलिए उस उम्र के प्राणियों का मल-मूत्र पेड़-पौधों के लिए अधिक पौष्टिक होता है, जब कि

(ख) सबसे छोटी उम्र के प्राणी अपनी खुराक के सर्वाधिक हिस्से को अपनी देह में गढ लेते हैं, जिससे तुलना में उनका मल-मूत्र पेड़-पौधों के लिए सबसे कम पौष्टिक होता है; और

(ग) गर्भिणी या दुहाती गायों का और कड़ी मेहनत करने-वाले बैलों का मल-मूत्र मध्यम पैमाने पर पौष्टिक होता है, क्योंकि वे अपनी खुराक के तत्त्वों को मध्यम पैमाने पर पचाते हैं और मध्यम पैमाने ही पर विसर्जित करते हैं।

---

* खदानों के कोयलों की राख के बारे में पढ़ा है कि जमीन को वह नुकसान पहुँचाती है।

११०. इस तरह उपर्युक्त प्रथम वर्ग के जीव जब अपनी खुराक के ९०% से अधिक तत्त्वों को विसर्जित करते हैं, तब दूसरे और तीसरे वर्ग के जीव क्रमशः ५० से ८०% तत्त्वों को अपनी देह से विसर्जित करते रहते हैं।

१११. इस तरह जिन प्राणियों की खुराक पौष्टिक रहती है, उनका मल-मूत्र भी पेड़-पौधों के लिए खूब पौष्टिक रहता है और जिनकी खुराक कमजोर रहती है, उनका मल-मूत्र भी उपर्युक्त तीनों तत्त्वों मे (नत्रजन, फॉस्फरस और पोटैशियम में) कमजोर ही रहता है।

११२. मिसाल के तौर पर खली और दाना पानेवाली गाय और बैल का मल-मूत्र केवल पयार पर रखे हुए गाय-बैल के मल-मूत्र से पोषक-तत्त्वों मे तीन से चार गुना तक अधिक पौष्टिक होता है और दाल, दूध और मांस आदि खानेवाले हमारे धनिकों का मल-मूत्र केवल छँटे चावल के भात और तरकारी पर निभनेवाले गरीबों के मल-मूत्र से चार से पाँच गुना तक अधिक पौष्टिक रहता है। गाय-बैल को खिलाने-पिलाने में कंजूसी करनेवाले भाइयों के लिए यह जानकारी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

११३. चौथा पोषक "कोयला-तत्त्व" तो इन सबके मल में करीब-करीब एक-सा ही रहता है।

मल-मूत्र में तीनों तत्त्वों की मात्रा

११४. औसत तौर पर पशुओं के और मानव-प्राणियों के मल-मूत्र मे उपर्युक्त तीनो तत्त्वों की मात्राएँ निम्न प्रकार रहती हैं :

	नत्रजन%	फॉस्फरस%	पोटैशियम%
गोबर मे	०·४४	०·१२	०·०४
गोमूत्र मे	१·०४	०· ०	१·३६
मल मे	१·००	१·०८	०·२४
मूत्र मे	०·६०	०·१६	०·२०

११५. इन पदार्थों का तुलनात्मक और आर्थिक महत्त्व ठीक ढंग से समझने के लिए प्राणियों की देहों से विसर्जित होनेवाले इन तत्त्वों की वार्षिक मात्राओं का जानना जरूरी है। वे मात्राएँ ये हैं:

(सेरों में):	नत्रजन	फॉस्फरस	पोटैशियम
मल में...	·५२	·६४	·१४
मूत्र में...	३·४४	१·६०	१·७०
गोबर में...	३·३०	७·८०	१·२२
गोमूत्र में...	१६·५८	०·४०	५·३८

११६. इन अंकों से स्पष्ट है कि खाद के अर्थशास्त्र में मूत्र का महत्त्व मल से अनेक गुना अधिक है और उसे बचाने की ओर हमारा ध्यान भी विशेष रूप से जाना जरूरी है।

अब देखना यह है कि इन पदार्थों के उपयोग का तरीका क्या है। देहातों में हम बराबर देखते हैं:

(१) मल-मूत्रादि का त्याग लोग जहाँ-तहाँ करते रहते हैं और वर्षा-ऋतु में उन पदार्थों से फेंटाया हुआ पानी बह-कर जिन खेतों में जाता है, उनकी उपज काफी अधिक होती है।

(२) उसी तरह पानी के टिकाव को सहनेवाली धान जैसी फसलों में गोबर भी लोग कच्चा ही पाटते हैं और मानते हैं कि उससे भी फसल को फायदा होता है।

मगर स्वास्थ्य, सफाई, संस्कारिता और स्वार्थ की दृष्टि से भी मल-मूत्र का उपयोग इस तरह होने देना ठीक नहीं मालूम होता। कच्चे गोबरवाले खेतों का भी जब पानी सूखता है, तब उस गोबर से भी नुकसान ही होता है। सभी दृष्टियों से देखने पर इसी निर्णय पर आना पड़ता है कि गोबर और मल का उपयोग उसको "मिश्र-खाद" के रूप में परिवर्तित करने के बाद ही करना उचित

होगा। इसके तुलनात्मक प्रयोग किये हुए मौजूद होते, तो बहुत अच्छा होता।

११७. पाश्चात्य लोग अपनी चीजों के तरह तरह के दुनियाँ हजार प्रयोगों का दावा कर सकते हैं, मगर हमारे काम का तो श्रीगणेश तक होना बाकी है। अब हममे से काफी लोगों को ऐसे प्रयोग करके उसका साहित्य भी तैयार करना होगा और जानना होगा कि दोनों तरह के उपयोग से फसल मे क्या अन्तर पड़ता है।

११८. मौजूदा जानकारी

(१) सड़ाया हुआ मल या गोबर पाटने से जमीन की व-ताकत जो कि कच्चे मल या गोबर सडाने के काम में खर्च हो जाती है, फसल को जमाने व बढाने के लिए बचायी जा सकती है।

(२) ये खाद सडाकर पाटने पर फसलों को रोग होने की संभावना भी बहुत घट जाती है।

(३) इतना ही नहीं, फसलों को लगे हुए रोग भी उनसे मिटने लगते हैं।

(४) पानी के सूखने पर भी उन फसलों को कोई हानि नहीं पहुँचती।

११९. इन पदार्थों को "मिश्र-खाद" के रूप मे परिवर्तित करने की विधि "मिश्र-खाद" शीर्षक प्रकरण मे बतायी जावेगी।

१२०. मगर मूत्र का उपयोग तो हर तरह से हो सकता है; जैसे अन्यान्य पदार्थों का "मिश्र-खाद" बनाते समय यदि उसे भी फेंट दिया जाय, तो उन पदार्थों की सड़ने की गति को वह गुना तेज कर देता है और यदि जैसा-का-तैसा ताजा-ताजा ही पाटना हो, तो भी हर फसल मे वह पाटा जा सकता है। मगर ऐसा करने से नीचे की सावधानियाँ रखना जरूरी हैं :

(१) ग्रीष्म-ऋतु में इसमें दसगुना पानी फेंटकर पाटना चाहिए। शीतकाल में तीन से चारगुना पानी का फेंटना काफी होता है, जब कि वर्षा-ऋतु में पानी फेंटने की जरूरत नहीं रहती; क्योंकि उस मौसम में जमीन में ही पानी की मात्रा काफी रहती है।

(२) फसल के पत्ते पियराई को छोड़ जब गहरा हरा रंग धर ले, तब मूत्र का पाटना बंद कर देना चाहिए; क्योंकि अत्यधिक हो जाने पर वह फसल को या तो सुखा देता है या रोगी बना देता है। मगर इस बात से बेहद डरने की भी जरूरत नहीं है। थोड़ा-बहुत बढ़ जाने से यह कोई नुकसान भी नहीं करता।

(३) आलू, मूली, प्याज आदि कंदों की खेती में यह खाद कच्चे रूप में पाटना अच्छा नहीं होता; यद्यपि शहराती या नजदीक-पास के काछी यानी तरकारी उपजानेवाली जाति इस बात का विवेक नहीं रखती।

(४) अन्य फसलों को भी ऐसे खाद दूर से पानी के साथ बहाकर ही पाटना चाहिए, ताकि लगी फसल को उसके छींटे न लगने पावें।

१२१. ढाका-मधुबनी में हम लोगों ने इसका एक प्रयोग किया था। पानी लगे धान के खेत में मानव-मूत्र का खाद ताजा-ताजा ही लगातार सात रोज तक जगह बढ़ाते-बढ़ाते पाटा, तो हर दिन के बीतने का अंतर देखने लायक था। पहले रोजवाले पौधों की ऊँचाई, रंग की गहराई और बीछियों (पेड़-पौधों की जड़ से फूटकर निकलनेवाले उनके नये बच्चे; जैसे कि केले के पेड़ और धान के पौधों की जड़ों से फूटते हैं) की संख्या दूसरे रोज के पौधों से काफी अधिक थी और हर दिन के पौधों की बाद के दिन से अधिक थी। ऊँचाई-निचाई में तो मानो एक सीढ़ी-सी लग गयी थी।

१२२. मूत्र का खाद शीघ्रातिशीघ्र असर करनेवाली चीज़ है। पेड़-पौधों के लिए वह उतना ही मुफीद है, जितना कि अन्य सजीव प्राणियों के लिए अपनी अपनी माँ का दूध।

मांसादि मृतावशेषों के गुण और उपयोग

१२३. पाँचवीं कलम प्राणियों के मृतशरीरों के मांसादि की है। इनमें चरबी का जो अंश रहता है, उसे साफ-साफ हटा-कर इनका उपयोग करना चाहिए, क्योंकि इनकी विघटन-क्रिया में चरबी कुछ रुकावट पैदा करती है।

१२४. पानी और चरबी को छोड़कर यह पदार्थ सारा-का-सारा प्रोतद्रव्य और क्षारों का बना हुआ है और सभी पदार्थों का प्रोतद्रव्य १६% नत्रजन के फेट से बनता है।

१२५. मांस में पानी की मात्रा ७२% से ७८% तक रहती है, प्रोतद्रव्य की मात्रा १८॥% से २२॥% तक रहती है, क्षारों की मात्रा १% से १॥% तक रहती है और चरबी की मात्रा २॥% से १३॥% तक रहती है। मांस के नत्रजन और क्षार पेड़-पौधों के लिए विशेष सुपच भी होते हैं।

१२६. इस तरह मांस में नत्रजन की मात्रा उसके बगैर सूखे किये वजन के ३% से ३॥% अंश तक रहती है; मगर इस पदार्थ का उपयोग भी मिश्रखाद के रूप में उसे परिवर्तित करने के बाद ही करना ठीक होता है; और इसकी विधि भी पेड़-पौधों की पात-छोट की तरह "मिश्रखाद" वाले प्रकरण में दी जावेगा।

हड्डियों की खाद

१२७. छठा पदार्थ पशुओं के मृतावशेषों की हड्डियाँ हैं। इस सम्बन्ध में भी अन्य प्रकरण में लिखा जायगा।

हरे खादों के गुण और उपयोग

१२८. सेंद्रिय खादों की ऊपर दी हुई फेहरिश्त में अंतिम चीज "हरे खाद" हैं। हमारे देश का किसान इन खादों को युगों से जानता है और जहाँ भी सुविधा हो, इन्हें वह जंगलों से और पहाड़ों से काटकर लाता है और खाद के काम में लेता रहता है। मगर इसे शास्त्र का रूप पाश्चात्य विज्ञान ने ही दिया है। उसने इसकी खेती करने का सिलसिला भी जारी किया है और हर तीन साल के अन्तर पर इसे उगाकर खाद के रूप में जोत देने का रवैया भी उसने प्रगतिशील मुहकमों में आमतौर पर जारी कर दिया है।

१२९. सेंद्रिय खादों में से हमारे देश के धनी या गरीब, सभी किसानों के लिए कोई भी चीज अगर सर्वसुलभ है, तो वह यही चीज है। बगैर आर्थिक खिंचाव के यह चीज हरएक किसान के सभी खेतों को आसानी के साथ मुहैया की जा सकती है और देश की उपज भी खूब बढ़ायी जा सकती है।

१३०. इसके लिए अमेरिका का किसान मटर उगाकर जोत देता है, इंग्लैंड का किसान गुवार उगाकर जोत देता है और हमारे देश में भी पाश्चिमात्य वैज्ञानिकों ने अलग-अलग पौधों की फसलों को उगाकर जोत देने का रवैया चालू कर रखा है। मिसाल के तौर पर पश्चिम भारत में "ढैंचा" है, पूर्वी भारत में "सनई" है और दक्षिण भारत में "सेस्वेनिआ स्पेसिओसा" नाम का पौधा है।

१३१. इस तरह हरे खादों की चीजें अलग-अलग देश-प्रदेशों में अलग-अलग हैं, मगर इन सबका वर्ग सब जगह एक ही है और वह है, द्विदल-वर्ग।

१३२. ये सभी हरे खाद, निरपवाद द्विदल-वर्ग से ही इसलिए पसंद किये गये हैं कि :

(१) वायुमंडल से "नत्रजन" को खींचने की ताकत और उसे अपनी देह में गढ़ने के अलावा जमीन में भी जमाने की ताकत इस वर्ग के पौधों को छोड़कर अन्य किसी वर्ग के पौधों में नहीं है।

(२) अलावा, नत्रजन की अधिकतावाले होने के कारण ये पौधे सड़ते भी बहुत जल्दी हैं।

१३३. मधुबनी (पोस्ट ढाका, जिला चंपारण, बिहार) में सनई की फसल चार ही रोज में सड़ गयी थी और धान की रोपनी पाँचवें दिन की गयी थी, फिर भी वह खूब सफल हुई थी।

१३४. मद्रास-राज्य के कृषि-अन्वेषण-विभाग के प्रधान (Post-Aduthurai, जिला-तंजौर) लिखते हैं कि "सेस्बेनिआ स्पेसिओसा" की फसल अधिक-से-अधिक एक एकड़ में छः सौ बत्तीस मन तक उगी थी। मधुबनी में भी हमें ऐसा ही अनुभव हुआ है।

१३५. यह चीज चैत-बैशाख की कड़ी धूप में भी टिकती है और धान के साथ पानी-लगे खेत में भी खूब बढ़ती है।

१३६. धान के साथ खेतों की मेड़ों से सटाकर, तीन-तीन इंच की दूरी पर केवल एक ही कतार इन पौधों की रोप दी जाय, तो भी धान की उस फसल के कटने तक में इस चीज का खाद इतना काफी हो जाता है (प्रति एकड़ पचास मन तक) कि केवल उतने खाद से बाद में तुरन्त लगनेवाली धान की दूसरी फसल (उस प्रदेश में नहर के कारण धान की फसलें एक के बाद दूसरी, ऐसे एक ही वर्ष में दो होती हैं) की उपज ड्योढ़ी तक बढ़ जाती है।

१३७. इसके बीज अक्तूबर, फरवरी और जून में भी बोये जा सकते हैं।

१३८. बोवाई इतनी छितरी करनी चाहिए कि बीज एक-दूसरे से करीब-करीब चार-चार, पाँच-पाँच इंच की दूरी पर गिरें।

१३९. इसको पानी की खूब भूख रहती है। पानी जितना अधिक मिलता है, उतनी ही वह बढ़ती है।

१४०. (क) सभी द्विदलों की तरह इसकी भी खासियत यह है कि बोने के पहले यदि थोड़ा-सा मिश्र-खाद मिला रहे, तो यह खूब तेज गति से बढ़ती है और खूब जल्दी सड़ती भी है।

१४० (ख) मोटे रूप में जोड़ें तो सभी हरे खादों में शुष्क मात्रा (सुखाकर उनमें के पानी के अंश को उड़ा देने के बाद का उनका वजन) उनके मूल वजन का २०% हिस्सा भर ही रहती है।

हरे खादों की पैदावार

१४१. मिश्र-खाद बनाने के लिए गोबर के साथ खेती-बारी की काट-छाँट जो फेंटनी होती है, उसकी कमी करीब सभी जगहों पर समान है। यदि अपने खेत के कुछ हिस्से में हरे खादों की कोई भी चीज उगायी जाय, तो काफी हद तक इस क्षति की पूर्ति हो सकती है और उस चीज को उगाने में जितनी जमीन की अन्य फसल गँवानी पड़ती है, उससे काफी अधिक लाभ भी उतने खाद के उपयोग से उठाया जा सकता है। साथ-साथ जिस जमीन पर वह हरे खाद की फसल उगायी जाती है, उस जमीन की फसल उपजाने की ताकत भी बढ़ जाती है।

१४२. इनमें से सेस्बेनिआँ की फसल तो कहीं भी उगायी जा सकती है; क्योंकि भेड़-बकरी भी इसे तब तक बरबाद नहीं करती कि जब तक उसे थोड़ी-सी भी अन्य हरियाली नोचने के लिए मिलती रहती है।

१४३. हरे खाद के लिए बोआनेवाली दूसरी चीज सनई है। इस चीज के तौर-तरीकों में "सेस्बेनिआँ" के तौर-तरीकों से कुछ भिन्नता तो है, मगर इसकी उपयोगिता भी सेस्बेनिआँ से कम नहीं है।

१४४. मद्रास-सरकार के कृषि-अन्वेषण-विभाग को इसमें इतनी सफलता नहीं मिली थी और वहाँ पर यह बीज प्रति एकड़ साढ़े बासठ मन से अधिक नहीं उपजी थी। मगर कलकत्ते में बोने के बाद केवल पचास ही रोज में यह प्रति एकड़ चार सौ मन तक उपज सकी थी।

१४५. बिहार का किसान इसे रेशों के लिए बोता है और रेशे निकालने के लिए इसे पानी में डुबोने के पहले इसके ऊपरी कोमल हिस्से को काटकर पशुओं को खिलाता भी है। इस हरे चारे को माल-मवेशी रुचि से खाते हैं और यह इन्हें सभी हालतों में खिलाया भी जा सकता है। बैलों को कड़ी मेहनत करने के समय भी खिलाया जा सकता है और गायों को गर्भावस्था में और दुहाने के मौसम में भी खिलाया जा सकता है।

१४६. इसके बोने में माल-मवेशियों को चारा देने का इरादा भी हो, तो इसे अगली वर्षा में बो देना चाहिए। यों तो यह बीज दो-दो, तीन-तीन सप्ताह के अंतर पर ऊपरी कोमल हिस्सों पर से काटने लायक हो जाती है और पकने के पहले इस तरह तीन-चार बार काटकर कुल मिलाकर डेढ़-दो सौ मन हरा चारा साल भर में प्रति एकड़ दे सकती है।

१४७. इसकी दो किस्में हैं : एक तो आश्विन कार्तिक में पककर बीज देनेवाली और दूसरी अगहन-पूस में पककर बीज देनेवाली। चारों के लिए बोना हो, तो अगहन-पूसवाली किस्म से चारा अधिक मिलने की संभावना रहती है।

१४८. अंत में इससे बीज भी लिये जा सकते हैं और यों आर्थिक लाभ भी उठाया जा सकता है।

१४९. सारी कार्रवाई तरकीब से की जाय, तो यह बीज एक साथ तीन-तीन काम दे सकती है : चाहे खाद, चारा और बीज लें; चाहे खाद, चारा और रेशे।

१५०. सनई को खेत ऐसा चाहिए कि जिसमें पानी न लगता हो; जब कि ढैंचा ऐसे खेतों में जोर पकड़ता है कि जिनमें पानी लगता हो; सेस्वेनिआँ, यद्यपि पानी लगनेवाले खेतों में खूब जोर पकड़ता है, फिर भी यदि खाद ठीक से मिली हो, तो पानी न लगनेवाले खेतों में भी वह अच्छा होता है।

१५१. मालूम होता है कि ढैंचा खुश्क प्रदेशों की चीज है और सनई और सेस्वेनिआँ, नम प्रदेशों की चीजें हैं।

१५२. कुल मिलाकर देखें, तो अधिक-से-अधिक विस्तार में काम देनेवाली चीज सनई है और "चौर" जैसे विशेष पानी लगे रहनेवाले खेतों के लिए "सेस्वेनिआँ स्पेसिओसा" है। मगर सेस्वेनिआँ एक नयी चीज है और इसके बीज मिलने का कोई सिलसिला अब तक जमा हुआ नहीं दिखायी देता।

हरी खादों का महत्त्व

१५३. सेन्द्रिय खादों मे सबसे कम खर्चवाली, सर्वसुलभ और फिर भी काफी महत्त्व रखनेवाली चीज "हरी खाद" ही हैं। रासायनिक विचारधारावालों ने, सेन्द्रिय-पद्धति में से यदि आमतौर पर किसी चीज को अपनाया है, तो वह यही चीज है। इस चीज को यदि वे नहीं अपनाते, तो रासायनिक खादों के दोष और जल्दी प्रकट हो जाते तथा वे और जल्दी बदनाम हो जाते।

१५४. (क) इस कथन का मर्म, यह जानने से विशेष स्पष्ट हो जायगा कि किसी अच्छी फसल के लिए, पोषक खादों की आवश्यकता, प्रति एकड़ जब दर ३० से ६० रतल की बतायी जाती है, तब हमारे खेत में हरी खाद (सनई) की फसल जो हुई (एकड़ में ४००ऽ), उसमें इन तत्त्वों की मात्राएँ निम्न प्रकार थीं :

फॉस्फरस	१५	रतल
नत्रजन	१८५	,,
पोटैशियम	१३०	,,

१५४. (ख) अथवा दूसरा उदाहरण यह है कि एक ही खेत के जिस हिस्से मे से, हरे चारे की फसल उगाकर उठा ली गयी (खाद के रूप में जोतकर खेत मे पाटी नहीं गयी—मगर उठा ली गयी), उस हिस्से में लगातार तीन फसलें औसतन ५०% अधिक-अधिक उपजी, बनिस्वत उसी खेत के दूसरे हिस्से से कि जो हिस्सा सुधारने के लिए चौमास (fallow) रखा गया था (कमजोर बने हुए खेतों से, एक मौसम भर फसलें न लेकर, उन्हें जोतकर आराम देने के लिए छोड रखने का जो रिवाज है, उसे किसान लोग "चौमास छोड़ना" कहते है)। खेत के प्रथम हिस्से का सुधार इसलिए हुआ कि हरे चारे की फसल द्विदल-वर्ग की थी और द्विदल वर्ग के पौधे, वायुमंडल के नत्रजन को भी जमीन मे जमाते है और अपनी सोरों को विशेष गहराई मे भेजकर, वहाँ के शेष तत्त्वों को भी विशेष मात्रा मे विघटित करके, खेत को सब तरह से पुष्ट करते है।

१५५. इसका अर्थ यह हुआ कि हमारे देश की फसलों को जल्द-से-जल्द और खूब बढा लेना हो, तो उनका आसान-से-आसान और अच्छे-से-अच्छा तरीका भी हरएक खाद का उपयोग पूरा-पूरा और लगातार लेते रहने मे है; चाहे उगाकर पाटें, और यदि ताक पर पानी के मिलने का योग न बैठा, तो उसे खेत मे से उखाड़ भी लें।

१५६ खेतों की इन सभी सेन्द्रिय-खादों को पचाने की ताकत भी अपरम्पार है और फसल के मान को बढ़ाने की उनकी ताकत भी उतनी ही अधिक है। मिश्र-खाद का, समान रूप से आधे इञ्च की तह समूचे खेत मे पाटने से, उस खेत की फसल चार गुनी बढ़ी थी; और डेढ इञ्च की तह पाटने से, सात गुनी बढ़ी थी। श्री अल्बर्ट महोदय का कहना है कि इन खादों की मात्रा, दो इञ्च के तह तक भी खुशी से बढ़ायी जा सकती है।

१५७. इसका अर्थ यह हुआ कि हरी खादों की फसलों को बीसों साल तक उगा-उगाकर गाड़ते रहें, तो भी फसलों की मात्रा लगातार बढ़ती जायगी। मर्करा (दक्षिण भारत) के एक किसान ने एक एकड में १४५ मन से अधिक धान उपजाकर, भारत-सरकार से 'कृषिपण्डित' की उपाधि और ५००० रु० का नकद इनाम लिया। यह बात अब जग-जाहिर है।

१५८. यह तरीका इतना फलदायी है कि चालू करते ही किसान के उत्साह को खूब बढ़ा देता है। हमारे मधुबनी-वाले खेतों में केवल तीन ही साल के प्रयत्न से फसल का मान सवाचार गुना तक बढ़ा है।

१५९. फलादि वृक्षों के पत्तों से और यदि जंगल नजदीक हो, तो उसके भी पत्तों से खेतों के सेन्द्रिय पदार्थों का मान बढ़ाने की गति और भी तेज कर ली जा सकती है।

१६०. इस तरीके में खिफत यह भी है कि एक बार बढ़ाये हुए मान को उसी स्तर पर टिकाये रखने के लिए खाद केवल उतनी ही पाटनी पड़ती है, जितनी फसल हम उस खेत में से उठाते हैं।

१६१. संक्षेप मे कहें, तो सेन्द्रिय खादों के सर्वोच्च मान तक पहुँचने का सर्व-प्रधान साधन, नियमित रूप से उगाकर पाटे जाने-वाली हरी खाद हैं और इन हरी खादों का पूरक साधन खेती-बारी की काट-छाँट है।

खलियाँ

१६२. सेन्द्रिय-खादों में एक और भी चीज है, जो आम तौर पर हर साल पैदा होती और मिलती रहती है। वह चीज है, तरह-तरह के तिलहनों की खलियाँ। इनके खरीदने में कुछ दाम तो लगते ही हैं, मगर खेती-बारी के काम में इनका कम महत्त्व नहीं है। जहाँ अन्य खाद पर्याप्त मात्रा में हासिल न हो सकें, वहाँ इनका भी उपयोग काफी फायदे-मंद होता है। इनका उपयोग मुख्यतया

नत्रजन-तत्त्व के लिए किया जाता है; मगर इनमें थोड़ा फॉस्फरस भी है। सभी तरह के तिलहनों की खलियाँ भी खाद के काम की हैं; मगर सामान्यतया काम में ली जानेवाली खलियाँ अंडी (रेंडी) की और "चिनियाँ-बादाम" (मूंगफली) की हैं। अंडी की खली में नत्रजन की मात्रा ६% है और मूंगफली की खली में ८%। सबसे ठंडी और अच्छी खली अंडी की है; मगर सबसे अधिक मात्रा में मिलनेवाली खली मूँगफली की है। यह खली भी काफी अच्छी है और बहुत बड़े पैमाने पर उपयोग में लायी जाती है। अन्य तिलहनों की खलियों में से सर्दी लगने से जो '[illegible]' जाती हैं, वे भी खाद के काम में ली जा सकती हैं।

१६३. हमारे मुल्क में मूंगफली की खली प्रतिवर्ष करीब तीन करोड़ मन पैदा होती है और उसका अधिकांश भाग हमारे ही देश में खाद के काम में खप जाता है। उसके अधिकांश भाग को बड़े-बड़े फार्मवाले, जो रासायनिक खादों का अधिकाधिक उपयोग करते हैं, खरीदते और खाद के काम में लेते हैं। [illegible] तरह इस चीज का उपयोग भी उनकी जमीनों को रासायनिक खादों के कारण बेकाम हो जाने से कुछ रोकता है।

१६४. अन्त में यह मान्यता एक वहम मात्र है कि सेन्द्रिय खादें रासायनिक खादों की तुलना में असर करने में बहुत मन्द होती हैं। वास्तव में मूत्र, राख, खलियों और पत्तों वगैरह की "मिश्र-खाद" उतनी ही तेज है, जितनी रासायनिक खाद। केवल हड्डी की खाद थोड़ी मंदी होती है, मगर उसके पोषक तत्त्व की आवश्यकता भी वैसी ही है। अलावा यह सारी सेन्द्रिय खादें बिल्कुल दोषमुक्त भी हैं और अपना असर भी अनेक वर्षों तक पहुँचाती हैं; जब कि रासायनिक खादों का असर एक ही फसल को मिलता और पैदा होनेवाली चीज के गुण और स्वाद उस जमीन को भी नुकसान पहुंचाती है।

: ८ :

हड्डियों की खाद

१६५. तुरन्त गिरी हुई ताजी हड्डियों में पानी ५०%, नत्रजन २॥ से ५%, चरवी ७ से ८%, लसीला पदार्थ ६ से ८% और शेष ३३% में से चूना-तत्त्व २२% और फॉस्फरस-तत्त्व ११% रहता है।

१६६. इनमें खाद की चीजें नत्रजन-तत्त्व, चूना-तत्त्व और फॉस्फरस-तत्त्व हैं। चूना-तत्त्व करीव-करीव सभी जमीनों में इतनी पर्याप्त मात्रा में रहता है कि पोपण-विज्ञान में वैज्ञानिक सामान्यतः इस तत्त्व का जिक्र नहीं करते। जहाँ मकान के काम में आनेवाला ताजा चूना पटने के वाद कुछ दिनों तक जमीन को कुछ-कुछ हानि पहुँचाता है, वहाँ हड्डियों का चूना-तत्त्व विलकुल निर्दोप है। वह जमीन और फसल, दोनों को लाभ ही पहुँचाता है।

इसी तरह हड्डियों के नत्रजन-तत्त्व और फॉस्फरस-तत्त्व भी अच्छे, हितकर और सुपच होते हैं।

१६७. हड्डियों की खाद का उपयोग सामान्यतः उसके फॉस्फरस-तत्त्व के लिए किया जाता है।

१६८. कम उम्र के पशुओं की हड्डियों में इस तत्त्व की मात्रा तुलना में प्रतिशत कम रहती है, उम्र के साथ-साथ वह मात्रा भी कुछ-कुछ वढ़ती जाती है। अलग-अलग वर्ग के पशुओं की हड्डियों में भी इस तत्त्व की मात्रा प्रतिशत भिन्न-भिन्न रहती है। मगर यह अन्तर वहुत थोड़ा होता है।

१६९. ताजी हड्डियाँ जव खुले में पड़ी रहती हैं, तव उनका पानी वड़ी तेजी से सूखता है। परिणामतः उनके शेप तत्त्वों की प्रतिशत मात्रा उस अनुपात से वढ़ जाती है।

हड्डी में से चरबी निकालना

१७०. हमारे देश में प्रधानतया गाय, बैल और भैंस की ही हड्डियाँ मिलती हैं। ये पशु अधिकतर ठंढ के मौसम में मरते हैं। मरने के बाद इनकी हड्डियाँ यदि एक-दो माह में ही बटोरी जायँ, तो उनमें से चरबी की मात्रा करीब १०% मिल जाती है।

१७१. यह चरबी साबुन बनाने के काम में आती है और उसकी कीमत कम-से-कम साबुन बनाने में काम आनेवाले तेलों की (जैसे कि नारियल का तेल) थोक कीमत के बराबर मिल सकती है। इस कीमत से हड्डियों के खरीद-दाम का आधे से अधिक हिस्सा निकल आता है। मगर हड्डियाँ यदि लंबे समय तक धूप में पड़ी रहें, तो पानी के साथ-साथ उनकी करीब करीब सारी चरबी सूख जाती है।

१७२. हड्डियों में से चरबी निकालना मुश्किल नहीं है। करीब चार-चार इञ्च के टुकड़े तोड़कर पानी में उबाल लेने से उनमें से चरबी निकलकर पानी की सतह पर तैरने लगती है। पानी ठंढा होने पर वह जमकर कड़ी हो जाती और हाथों से निकाली जा सकती है।

१७३. इसके लिए किसी खास आकार-प्रकार के बरतन की भी जरूरत नहीं। किसी भी बरतन से काम लिया जा सकता है। बरतन बड़ा हो, तो एक साथ काफी हड्डियाँ उबाली जा सकतीं और समय तथा ईंधन की भी काफी बचत हो सकती है। मिट्टी के तेल के दस पीपे समानेवाले "ड्राम" देहाती काम के लिए काफी कारगर साबित हुए हैं।

१७४. इस तरह निकाली हुई चरबी में कुछ बदबू भी रहती है। साबुन के कारखानेवाले उसे नमक-फेंटे पानी में उबालकर गंध-हीन करते और बाद में साबुन बनाने के काम में लेते हैं।

१७५. चरबी निकालने के लिए हड्डियों को तोड़ना भी आसान है। किसी वजनदार कत्ते की या अन्य औजार की उल्टी ओर से एक-एक हड्डी को लेकर जरा जोर से मारने पर हड्डियाँ टूट जाती और कुछ-कुछ फट भी जाती हैं।

ग्लू, गिलेटिन, सरेस आदि

१७६. हड्डियों में जो लसीला पदार्थ होता है, उससे वैज्ञानिक लोग "ग्लू", "गिलेटिन", "सरेस" आदि पदार्थ बनाते हैं। ये सभी चीजें बहुत कीमती हैं औरइनसे काफी कमायी भी की जा सकती है। मगर इन चीजों के निकालने, बनाने के लिए एक तो पदार्थ-विज्ञान (Science) की काफी जानकारी हासिल करनी पड़ती है। दूसरे, काफी पूँजी लगाकर बड़े-बड़े कार-खाने भी खड़े करने पड़ते हैं और वाष्प-यंत्रों को चलाने की जान-कारी भी हासिल करनी पड़ती है।

१७७. देहाती काम के लिए यह सब संभव नहीं है। शहर-वाले भी अब तक यह काम नहीं कर पाये। हमारी सरकार को भी अब तक इन प्रयोगों मे सफलता नहीं मिली है। हमारे देश में अब तक ये चीजें कहीं भी नहीं बन सकी हैं।

१७८. खाद बनाने के लिए हड्डियों में से इस लसीले पदार्थ का हटना भी जरूरी है; क्योंकि इस पदार्थ की मौजूदगी में हड्डियों के फॉस्फरस-तत्त्व की विघटन-क्रिया अत्यन्त मन्द पड़ जाती है। इसलिए हमारे देश में हड्डियों से खाद बनानेवाले लोग इस पदार्थ को नष्ट ही कर देते हैं। हड्डियों को यों ही कच्चे रूप में विदेशों को निर्यात करने की तुलना में इस लसीले पदार्थ को नष्ट करके उनमें के फॉस्फरस-तत्त्व को खाद के काम में ले लेना विशेष लाभदायक प्रतीत हुआ है।

हड्डी की खाद बनाने के तरीके

१७९. इस तरह हमारे देश में हड्डी की खाद बनाने के दो तरीके प्रचलित थे :

(१) गंधक के तेजाब के योगवाला रासायनिक तरीका, जिससे हड्डियों से "सुपरफॉस्फेट" नामक खाद बनती है और (२) चरबी निकाली हुई हड्डियों को "वाष्प-यंत्रों" की मदद से चूर देने का। बाद में वर्धा के ग्रामोद्योग-संघ ने एक तीसरा तरीका चलाया : (३) "चरबी निकाली हुई हड्डियों" को जलाकर बुक देने का। यह तरीका उपयुक्त दोनों तरीकों का आविष्कार होने के पहले युगों तक प्रगतिशील दुनिया मे आमतौर पर चल चुका था। अंत में कुछ लोग जापान जाकर वहाँ से एक चौथा तरीका (४) "दधीचि-यंत्र" (Bone digestor) नाम की एक मशीन बुन्ने (Cast Iron) की कोठी के रूप में ले आये है। यह कोठी वाष्प के दबाव से हड्डियों को गरम करती है, जिससे हड्डियाँ एकदम मुलायम हो जाती और बडी आसानी के साथ बुक जाती है।

१८०. इनमे से "सुपरफॉस्फेट" हड्डियो और खदानों के फॉस्फरस-तत्त्ववाले पत्थरों से भी बनता है। ये पत्थर और हड्डियाँ जमीन और पेड़-पौधों के लिए निर्दोष हैं और पोषक भी। हड्डियाँ तो सेंद्रिय भी हैं। मगर सुपरफॉस्फेट बनाने की प्रक्रिया अत्यंत दोषपूर्ण है; क्योंकि सुपरफॉस्फेट गंधक के तेजाब के योग से बनता है और यह तेजाब जमीन की जीव-सृष्टि के लिए अत्यंत घातक है।

१८१. रासायनिक खादों के दोष उन खादों के मूल पदार्थों मे नहीं हैं, मगर उन निर्दोष पदार्थों पर की जानेवाली इसी तरह की तेज तेजाबोंवाली दोषयुक्त प्रक्रियाओं के कारण है। ये प्रक्रियाएँ उन मूल पदार्थों का असर तेज बनाने के लिए की जाती

हैं। इसका निर्दोष तरीका अब तक रासायनिकों के हाथ नहीं लगा, जिससे उनमें पूर्ववर्णित दोष अभी तक रह गये हैं।

१८२. रासायनिक-विज्ञान का यह भी अनुभव है कि पाँच-छह माह का या उससे भी लंबे काल का समय लेनेवाली फसलों और काफी नमीदार खेतों में होनेवाली धान जैसी फसलों के लिए तो किसी प्रक्रिया की जरूरत ही नहीं है; क्योंकि महीन बुकाया* हुआ उन मूल पदार्थों का चूरा ऐसी फसलों में करीब उतनी ही तेज गति से काम करता है, जितनी गति से रासायनिक खादें करती हैं।

१८३. पर स्थापित हित (vested interests) अपनी-अपनी चीज बेचने में मशगूल हैं। दुनिया में बिकती भी वे ही चीजें हैं, जिनका प्रचार हर दिशा में जोरों से किया जाता है। नतीजा यह हुआ है कि फॉस्फरस-तत्त्वयुक्त पत्थरों के चूरे की जानकारी वैज्ञानिकों के साहित्य में ही सीमित रह गयी है और व्यवहार के क्षेत्र में उसका कोई प्रचार नहीं दीखता।

१८४. अब चरबी निकाली हुई कच्ची हड्डी के चूर को लें। इसमें भी लसीला पदार्थ बाकी रह जाता है, जिसके कारण उस चूरे का फॉस्फरस-तत्त्व पेड़-पौधों के लेने लायक बनने में अत्यधिक समय ले लेता और पूरा विघटित होने में सात-सात साल का समय लगा देता है।

१८५. सुपरफॉस्फेट और यह चूरा वाष्प-शक्ति से संचालित या विद्युत्-शक्ति से संचालित यंत्रों की मदद के बगैर बन भी नहीं सकते। सुपरफॉस्फेट बनाने के लिए पदार्थ-विज्ञान की जानकारी हासिल करना भी जरूरी है। देहातों और विकेंद्रित ढंग के उद्योग-संघटन के लिए यह सब अशक्य और अनिष्टकर है।

---

* बुकना = चूर्ण करना, पीसना।

१८६. हड्डी से खाद बनाने का तीसरा तरीका उसमें से चरबी निकाल लेने के बाद उसे जलाकर बुक देने का है। हमारा कई सालों का निजी अनुभव है कि यही सबसे अधिक फायदेमंद और आसान तरीका है। इसमें केवल चार रुपये कीमत के एक मूसर की और दो रुपये कीमत के एक चलने की जरूरत पड़ती है। इतने ही साधनों से एक आदमी दो-तीन रोज में दो मन हड्डियों में से चरबी निकालकर, जलाकर और कूटकर उसकी खाद बना सकता है। केवल एक ही बार कर लेने से सामान्य समझवाला देहाती इस काम को सीख भी सकता है।

१८७. और अंत मे, चौथे तरीकेवाली जापानी कोठी की सिफत यह है कि उससे वाष्प के दबाव मे उबाली हुई हड्डियाँ अन्य सभी तरीकों की तुलना मे अधिक आसानी के साथ बुका जाती और अधिक महीन भी बुकाती हैं। मगर यह एक बात छोड़-कर और कोई अच्छाई इस कोठी में नहीं है। कुटाई की आसानी के कारण मजदूरी मे जो बचत होती है, वह भी उतनी काफी नहीं कि कोठी की कीमत के सूद तक को चुका सके। उसके लिए एक छोटा-सा छपरा भी बाँधना पडता है। सैकड़ों गाँवो की हड्डियों को एक ही जगह पर जुटाकर उनकी कीमत के रूप मे हजारों रुपये की पूँजी भी फँसाना पड़ती है और इस तरह इस कोठी को हमेशा के लिए पूरा काम भी देते रहना पड़ता है। यह सब न करने से सारी पूँजी का सूद उसके खरीदार के सिर बराबर पड़ता रहेगा और लाभ कुछ भी न होगा। गांधी-निधि या और कोई दूसरी संस्था कुछ कोठियाँ सस्ते मे या मुफ्त मे बाँटे, तो भी इन कोठियो की आर्थिक अयोग्यता दूर नहीं हो सकती।

१८८. मगर इस कोठी मे सबसे खराब बात यह है कि इससे सारा-का-सारा यह व्यवसाय पूँजीवाद की भट्टी मे झोंका जाता है, जब कि जलाकर बुकनेवाले तरीके मे ऐसी एक भी असुविधा

नहीं है। केवल दस रुपये की पूँजी लगाने से हरएक गाँव अपनी-अपनी हड्डियों से खाद बनाकर अपने आप उसका उपयोग कर सकता और इस सारे उद्योग को जड़ से फुनगी तक काम करनेवालों के हाथों में रख भी सकता है।

१८९. फिर यदि इस कोठी में "ग्लू", "गिलेटिन" आदि चीजें बनाने की भी ताकत रहती, तो कुछ सोचने की बात थी। उसमें ऐसी ताकत होने का आभास उसके प्रचारकों की भाषा में है; मगर वास्तव में वैसी कोई ताकत उस कोठी में नहीं है।

१९०. इस तरह जहाँ इस कोठी के पक्ष में एक गलत प्रचार है, वहाँ हड्डियों को जलाकर कूटनेवाले तरीके के विपक्ष में भी एक ऐसा आक्षेप है कि उससे उनमें का फॉस्फरस तत्त्व पूरा-का-पूरा जल जाता है। मगर इस बात का समर्थन कोई भी कृषि-विशेषज्ञ या पदार्थ-वैज्ञानिक नहीं करता। वास्तव में फॉस्फरस-तत्त्व सभी पदार्थों में इस रूप में रहता है कि न तो वह जलाने से जलता और न गलाने से सहज ही गल सकता है। अमरीका के व्यापारी यह चीज लाखों मन की मात्रा में जला-जलाकर राख (Bone-ash) के रूप में अरसे तक हमारे देश से ले जाते रहे।

१९१. हड्डियों की ऐसी राख में फॉस्फरस-तत्त्व की मात्रा हड्डियों की अन्य किसी किस्म की खाद से काफी अधिक (४०%) है, यह बात भी इस कथन का समर्थन करती है कि जलाने से हड्डियों का फॉस्फरस-तत्त्व नष्ट नहीं होता। हॉ, केवल यह आक्षेप सही है कि जलाने से उनमें का नत्रजन-तत्त्व उड़ जाता है। मगर यह तत्त्व तो जापानी कोठीवाले तरीके में भी उतना ही उड़ता है, पर इसकी मात्रा होती ही इतनी कम है कि उसकी फिक्र करने की कोई जरूरत ही नहीं।

१९२. मगर जलाकर बुकनेवाले तरीके में यह असुविधा अवश्य है कि जलाने पर वह बदबू फैलाता है। फिर भी देहातों

किसान के लिए ऐसी-ऐसी समस्याएँ पहेली-सी नहीं बन बैठतीं। वह इन्हें सहज ही में सुलझा लेता है। पवन-रहित रात्रि में एकबारगी बड़ा आवाँ फूँक देने से यह बात किसीको उतनी नहीं अखरती; जब कि जाड़े की ओसवाली रात्रियों में तो इसकी बदबू फैलती तक नहीं है; और हड्डियों के मिलने का मौसम भी जाड़े का ही है।

१९३. तो अब इन चारों तरीकों की तुलना और कई पहलुओं से भी कर लें : (१) सुपरफॉस्फेट में फॉस्फरस-तत्त्व की मात्रा १७% है और उसकी कीमत, बावजूद सरकारी रिआयत के प्रति हंडर* (११२ रत्तल) १७ रु० लगती है। बाष्पयंत्रवाले कच्ची हड्डी के चूरे में उसकी मात्रा २२% है और उसकी कीमत भी प्रति हंडर १८-२० रु० तक लगती है।

१९४. कोठीवाला हड्डियों का मैदा ऊपर के दोनों पदार्थों से काफी सस्ता तो पड़ेगा, फिर भी पूँजी पर आधारित और व्यावसायिकों के हाथों में होने के कारण कुछ महँगा पड़ना ही चाहिए।

१९५. जब कि जलाकर बुकनेवाले तरीके में हड्डियों के वजन से आधे वजन के चैलों को छोड़कर, केवल दो-तीन रोज के शरीर-श्रम के अलावा और कुछ नहीं लगता।

१९६. जलायी हुई हड्डियाँ कूटने पर अनेक बारीकी में बुकाती हैं। उनका करीब आधा हिस्सा बिलकुल राख जैसा महीन हो जाता है, शेष आधे का कुछ हिस्सा, महीन रवा जैसा दानेदार और कुछ हिस्सा मोटे दानेवाले रवे जैसा रहता है। इनमें के राखवाले हिस्से में, फॉस्फरस-तत्त्व की मात्रा ४०% रहती है और दोनों मोटाई के रवों में वह करीब २९%

---

* 'हंडरवेट' एक अंग्रेजी तोल।

रहती है। मगर हड्डियों को जलानेवाले चैलों* की राख भी हड्डियों की राख के साथ फेंटी जाने से उसका कुल वजन बढ़ जाता है, इस कारण उस राख के फॉस्फरस-तत्त्व की मात्रा भी घटकर करीब ३०% ही रह जाती है।

१९७. इस तरह राख और रवे का मूल्य सुपरफॉस्फेट की तुलना में प्रति हंडरवेट करीब ३० रुपये होना चाहिए, मगर वह नाममात्र का ही रहता है।

१९८. इनमें जो सुपरफॉस्फेट होता है, वह केवल एक ही फसल में काम आता है। कच्ची हड्डी का चूरा अपना पूरा तत्त्व फसलों को दे देने में छह-सात साल का समय ले लेता है और जापानी कोठी का मैदा दो-तीन साल।

१९९. जलायी हुई हड्डी के बुक्के की राख जैसा हिस्सा सुपर-फॉस्फेट जितनी तेजी के साथ काम देता है, जब कि उसका रवे जैसा हिस्सा अपना कुल फॉस्फरस फसलों को देकर खतम करने में करीब तीन साल का समय ले लेता है।

२००. यदि राख जैसा हिस्सा धान के समान मौसमी फसलों में पाटा जाय, महीन रवे जैसा हिस्सा केले-पपीते के समान दो-तीन साल टिकनेवाली फसलों में और मोटे रवे जैसा हिस्सा आम-लीची के समान दीर्घकालीन फसलों में पाटा जाय, तो उनके तत्त्वों का किसान को अधिक-से-अधिक फायदा मिल सकता है। पर जहाँ ऐसी सुविधा न हो, वहाँ पर वह समग्र खाद एक साथ धान जैसी फसलों में पाटी जाय, तो भी कोई हर्ज नहीं। किन्तु पहले साल एक मन की जगह डेढ़ मन के हिसाब से पाटनी चाहिए और बाद में मन की जगह मन के हिसाब से ही पाटते रहना चाहिए।

---

* चैले = कुल्हाड़ी से चीरे हुए लकड़ी के टुकड़े।

२०१. सुपरफॉस्फेट को छोड़कर हड्डियो की शेप सभी खादों का विघटन प्रारंभ होने मे करीब सात सप्ताह का समय लग जाता है। इसलिए इन खादों को यथासंभव फसल लगाने के पहले ही पाट देना चाहिए।

२०२. धान के समान मौसमी फसलो के लिए फॉस्फरस-तत्त्व की आवश्यकता प्रतिएकड़ करीब दस सेर मानी गयी है। जलाकर बुके हुए तैंतीस सेर चूरे मे इतना फॉस्फरस-तत्त्व रहता है।

२०३. यदि गोवर आदि की देहाती राख हो, तो उसे भी इस आवश्यकता को पूरी करने के काम मे लिया जा सकता है। उसमे फॉस्फरस-तत्त्व की मात्रा करीव सवा फीसदी रहती है। इस राख की दो गाड़ियाँ यानी वीस मन से भी उपर्युक्त दस सेर की मात्रा पूरी की जा सकती है। (खयाल रहे कि लकड़ियों की राख मे पोटैशियम-तत्त्व की मात्रा १०% से १५% तक रहती है, मगर फॉस्फरस-तत्त्व की मात्रा तो नाममात्र ही रहती है।)

२०४. अत मे, हड्डियों को जलाकर चूर करने का तरीका भी हमें समझ लेना चाहिए। इसके लिए प्रारंभ मे चरवी निकाली हुई हड्डियों को खूब सुखा लेते हैं और बाद मे उन्हें चूने के आवे जैसे आवे में जला लेते हैं। जलाने के लिए चैलों को एक-डेढ़ इंच मोटाई की तह पर हड्डियों की एक तह बिछाते हैं और उन पर फिर दुबारा और तिबारा, ऐसी दो-दो तहे बिछाते-बिछाते उन्हें आवश्यकतानुसार दो-तीन फुट की ऊँचाई तक बाँध लेते और तब उस आवे को सुलगा देते हैं। जल्दी से आग पकड़ने के लिए तली मे सबसे नीचे पयाल की एक फाजिल तह भी बिछायी जाती है।

२०५. रात में फूंका हुआ आवा सवेरे तक जलकर कूटने लायक ठंडा हो जाता है और तब वह विशेष ठंडा होने के पहले

कूट लिया जाता है, जिससे वह कुछ तेजी के साथ वुक जाता और कुछ अच्छा भी वुकाता है।

२०६. मूसर : कूटनेवाला मूसर जामुन या सखुए जैसे कड़े और वजनदार काठ का बना होता है। उसकी लंबाई छह फुट रखी जाती है, जिससे उसे आवश्यकतानुसार वजन मिल जाता है। वह मोटाई-चौड़ाई में तीन इञ्च की गोलाई में घड़वाकर चिकना बनाया जाता है, जिससे कूटनेवालों के हाथों में न गड़े। वह ठीक मध्य में एकआध फुट की लंबाई भर कुछ पतला भी बनाया जाता है, जिससे कूटनेवालों के पञ्जों में समा सके। उसकी शामी टोपीनुमा रखी जाती है, जिससे कूटते समय उसका काठ हड्डियों से न टकराकर घिसने से बचा रह सके। ऐसे मूसर का वजन करीब पाँच-छह सेर और कीमत करीब तीन-चार रुपया लगती है।

२०७. कुटाई : कूटने के काम में इस बात का खयाल रखना पड़ता है कि वुकनी जितनी महीन होगी, फसल में वह उतनी ही जल्दी और अधिक काम देगी। इसके लिए जहाँ भी कड़ी जमीन हो, हड्डियाँ टालकर खुली जमीन पर ही कूटी जा सकती है।

२०८. चलनी : एकआध पीपे* को, खड़ंजा (perpendicularly) दो टुकड़ों में काट देने से उसमें से कूटी हुई हड्डियों को छानने की दो चलनियाँ बन सकती हैं। उनमें बढ़ई से ऐसे छेद करवा लिये जायँ कि मूँग की दाल से अधिक मोटे दाने गिरने न पायें।

२०९. शेप : चलाने के बाद "शेप" में जो मोटे दाने बचे, उनको उसके बादवाले आवे की सबसे ऊपरवाली तह पर बिछाकर दुबारा जलाना और कूट लेना चाहिए।

---

* टीन का कनस्तर।

२१०. चैला : सुखायी हुई एक मन हड्डी को जलाने के लिए आधे मन से लेकर पौन मन तक चैलों की जरूरत रहती है।

२११. खाद की उतार : इस तरह जलाकर कूटने पर हड्डियों के सुखाये गये सौ सेर वजन में से करीब साठ सेर खाद मिल जाती है। इस वजन मे करीब पाँच-छह सेर चैलों की राख भी शामिल है।

२१२. लभ्य मात्रा : इस फॉस्फरस-तत्त्व की खासियत यह है कि जब वह भोज्य रूप पाने में करीब सात सप्ताह का समय ले लेता है, तब वापस अभोज्य रूप में परिवर्तित होने में बहुत ही तेज गति से चलता है और कष्ट से पाटी हुई मात्रा का २०% या अधिक-से-अधिक २५% हिस्सा फसलों को प्राप्त हो पाता है। यह हालत रासायनिक "सुपरफॉस्फेट" के फॉस्फरस-तत्त्व की है। मगर हड्डियों की खाद का फॉस्फरस इससे काफी अधिक मात्रा में पेड़-पौधों को हासिल होता है, क्योंकि उसके साथ हड्डियों का जो चूना तत्त्व फटाया रहता है, वह उसे गलत तत्त्वों के साथ योग करने से रोकता है; जब कि पेड़-पौधों की निःश्वास के कर्बुद्राम्ल के पास उसकी रोक नहीं टिकती और सोरें उसे खींच लेती है।

२१३. प्रयोग करने पर वैज्ञानिकों को यह भी अनुभव हुआ है कि यह खाद पौधों की जड़ों के पास पाटने से उसके आधे मन से ठीक उतना ही फायदा होता है, जितना सारे खेत मे फैलाकर पाटे हुए एक मन से होता है। जड़ों के पास पाटने से पौधे अधिक तेजी के साथ जमते है और अंत मे वह फसल भी कुछ जल्दी ही पक जाती है।

एक नया अनुभव

२१४. जलायी हुई हड्डियों को कूटने के लिए सर्वप्रथम काठ के ऊखल और मूसर का प्रयोग किया गया; मगर हड्डियों का चूरा

बार बार ऊखल की तह में जाम होने लगा और कुटाई चालू रखने के लिए उसे बार-बार उखाड़ते रहने में काफी समय बर्बाद होता रहा और काम बहुत कम होने लगा।

२१५. इसलिए बाद में हड्डियाँ जब खुली जमीन पर कूटी जाने लगीं, तब ऊपर की कठिनाई तो दूर हो गयी, मगर हड्डियाँ मूसर की चोट कम पकड़ने लगीं, यानी कुटाई अधिक समय लेने लगी और चलनी में से न निकलनेवाली मोटी रोड़ी भी अधिक बचने लगी। साथ ही जमीन की कुछ मिट्टी भी हड्डी के चूरे के साथ फँटाने लगी।

२१६. अंत में जब पयार की कुट्टी काटने लायक एक ठीहे की ऊपरी तह, सर जमीन से समतल रहने जितनी जमीन में गाड़कर उस पर हड्डियाँ कूटने लगे, तब ऊपर की सभी मुश्किलें दूर हो गयीं; हड्डियाँ अच्छी और जल्द कुटने लगीं और चलनी में से न निकलने लायक मोटी रोड़ी की मात्रा भी काफी घटकर प्रतिमन केवल एकआध सेर ही शेष रह गयी। इस तरह ठीहेवाला यह अंतिम तरीका सर्वाधिक उपयोगी साबित हुआ।

२१७. हड्डियों की खाद बनाने का यह आवे और मूसर-ठीहे-वाला तरीका करीब-करीब दोषरहित और सर्वोत्तम है।

卐卐卐

: ९ :

"कम्पोस्ट" यानी "मिश्र-खाद"

२१८. पेड़-पौधों की काट-छाँट, सजीव प्राणियों का मल मूत्र और इन दोनों के मृतावशेष पेड़-पौधों के पोषण के लिए उत्तम और स्वास्थ्यवर्धक सामग्री है, यह हम पिछले प्रकरणों मे देख चुके हैं। मगर मूत्र और राख को छोड़कर शेष सामग्री को पेड़-पौधे उसकी असली हालत में ले नहीं सकते। इसके लिए उसे या तो द्रवित होना अथवा सड़ना पड़ता है। इन दोनों परिवर्तनों मे यह प्रक्रिया समान है कि "उनके तत्त्वों को वायु-मंडल के प्राणवायु के योग से परिवर्तित होना पड़ता है।"

२१९. इन सभी द्रव्यों के द्रवित होने की प्रक्रिया पहाड़ों पर और जंगलों में निरन्तर अविरत रूप से चलती ही रहती है; मगर वह क्षेत्र को बहुत ही बड़े विस्तार मे छेकती और पूर्ण होने मे समय भी काफी ज्यादा लेती है, जब कि सड़ाने की क्रिया बहुत ही परिमित क्षेत्र मे हो सकती और समय भी बहुत ही कम लेती है। इनमे से पहली प्रक्रिया का आयोजन कुदरती है, जब कि दूसरी को मनुष्य ने अपनी ख्वाहिश के लिए आयोजित किया है।

२२०. इन दोनों प्रक्रियाओं मे काम करनेवाले सिद्धान्त (Principles) एक समान है; जैसे :

(क) इन दोनों मे भी जोड़न (जामन) के रूप मे कुछ खटाई की जरूरत रहती है;

(ख) प्राणवायु के मिलते रहने की जरूरत रहती है; और

(ग) सड़ाने की सामग्री को नम रखने की जरूरत भी रहती है।

२२१. गोबर में जोड़न के लायक खटाई तो मौजूद है; मगर गोबर यदि अकेला रहे, तो उसमें वायु-संचार की गुंजाइश नहीं रहती और इसलिए अकेले गोबर की टाल जल्दी नहीं सड़ती। इसी तरह पेड़-पौधों की काट-छाँट की टाल में वायु-संचार की गुंजाइश तो काफी रहती है, मगर उसमें जोड़न के लायक खटाई की मात्रा बहुत ही कम है। किन्तु शेष सभी पदार्थों को गोबर के साथ फेंट लेने से सड़न-क्रिया के लिए आवश्यक सभी परिस्थितियाँ एक साथ हासिल हो जातीं और इन दोनों की संयुक्त टाल बड़ी तेज गति से सड़ती है।

२२२. इस तरह सड़ाने में जब अनेकानेक पदार्थ एक साथ फेंटे जाते हैं, तब उनमें से बननेवाले अंतिम पदार्थ का नाम अंग्रेजी में "कंपोस्ट" और हिंदी में "मिश्र-खाद" है।

२२३. ऐसी "मिश्र-खाद" यानी "कंपोस्ट" की पोषक ताकत ठीक उतनी ही कम या बेशी रहती है, जितनी कि उसमें फेंटे जानेवाले पदार्थों में वह मौजूद होती है, जैसे कि गोबर। यदि गोबर पर्याप्त दाना खाये हुए मवेशियों का होगा, तो उसकी ताकत केवल पयार खानेवाले मवेशियों के गोबर से अनेक गुना अधिक होगी और पेड़-पौधों की काट-छाँट में द्विदलों के पौधे यदि अधिक रहें, तो उनके योग से बननेवाली "मिश्र-खाद" में नत्रजन की मात्रा भी उस अनुपात से अधिक रहेगी। और यदि "मिश्र-खाद" बनाये जानेवाली टाल में पाखाना, पेशाब या मृत मांस भी मिला रहे, तो ऐसी टाल का सड़ने का वेग भी अत्यधिक बढ़ जाता और उसमें से बननेवाले अंतिम पदार्थ की पोषक-शक्ति भी उतनी ही अधिक बढ़ जाती है।

२२४. ऐसी "मिश्र-खाद" बनाने की अनेक विधियाँ कृषि-जगत् में चल पड़ी हैं। सधन लोगों ने उसे ठीक एक कारखाने का

रूप दे दिया और लंबे-लंबे गढ़ों को ईंट-चूने से बाँधकर लोहे के पाइपों के जरिये उनके पास पानी पहुँचाने का प्रबन्ध भी किया है। अत्यन्त कम आवश्यकताओं के लिए खास-खास किस्म के काठ के बक्स भी उन्होंने बनवाये हैं; जब कि हमारे गरीब किसानों के लिए भिन्न-भिन्न प्रदेशों को हमारी सरकारें मिट्टी खोद बनाये गढ़ों में ऐसी खाद बनाने की बात का ही प्रचार करती हैं। मगर ऐसे प्रदेशों के लिए, जहाँ कि वर्षा के मौसम में गढ़ों के तल में पानी लग जाने का अंदेशा रहता है, हमने जमीन के ऊपर ही इस खाद को बनाने का तरीका अपनाया है, क्योंकि गढ़ों में पानी लग जाने पर डूबनेवाली टाल के हिस्से के जीवाणु मर जाते और उतने हिस्से की सड़न-क्रिया उस पानी के सूखने तक रुकी रहती है।

२२५. जमीन के ऊपर "मिश्र-खाद" बनाने का तरीका निम्न प्रकार है :

(१) प्रारम्भ में जमीन पर चार-पाँच इञ्च मोटाई की वृक्षों की मोटी-मोटी डालियों की तेरह-चौदह लाइनें, एक-दूसरी से करीब दस-दस इञ्च की दूरी पर पूरब से पश्चिम बिछायी जाती हैं, जिससे कुल चौड़ाई करीब १५′ के जितनी हो जाय और लंबाई करीब ३०′ के जितनी। इन पंक्तियों के ऊपर पतली डालियों की एक दूसरी जाल दो-दो, तीन-तीन इञ्च के दोगों (Inter-spaces)-वाली नीचेवाली मोटी जाल से उल्टी दिशा में यानी उत्तर से दक्षिण बिछायी जाती है, ताकि सड़ानेवाली सामग्री जब उन पर लादी जाय, तो वह बीच के दोगों से निकलकर जमीन पर न गिरने पाये।

(२) डालियों की इस दोहरी जाल पर सड़ाने की पेड़-पौधों की काट-छाँट कोई आठ-दस इंच मोटाई की तह में समान रूप से बिछाकर पानी से भिगो दी जाती है।

(३) उस पर कोई दो इंच की मोटाई में गोबर की एक तह बिछाकर वह भी पानी से भिगो दी जाती है।

(४) इन दो तहों पर राख की एक तीसरी तह भी चौथाई (¼") इंच की मोटाई में समान रूप से बिछाकर वह भी पानी से भिगो दी जाती है। यदि उतनी मात्रा में राख न मिले, तो उसके स्थान पर मिट्टी की आधी इञ्च मोटाई की एक तह बिछाकर वही पानी से भिगो दी जाती है।

(५) इस तरह इन तीन तहों की मालाएँ एक के ऊपर दूसरी, तीसरी और चौथी, लदाते-लदाते वहाँ तक बिछाते जाते हैं, जहाँ तक ऊँचाई मे वह सारी टाल छह फुट के करीब ऊँची न उठ जाय।

(६) यदि सहज और सही तरीके से प्राप्य हो, तो पटनेवाले खेत के हिसाब से जलायी हुई हड्डी के चूरे को भी इसी टाल के साथ-साथ सड़ा लेते हैं। हरएक तह-माला में, गोबर और मिट्टी की तहों के बीच थोड़ा-थोड़ा छिड़कते जाने से यह काम सुचारु रूप से संपन्न हो जाता है।

(७) जहाँ तक संभव हो, यह सारी टाल चारों बगलों पर ढालू न बनाकर खड़ंजा लदायी जाती है।

(८) उसकी अंतिम तह-माला, पूरब-पश्चिम की दिशावाले मध्यभाग में, हाथी की पीठ की तरह उठी हुई और उत्तर और दक्षिणवाले बाजुओं की ओर ढलती हुई बनायी जाती है।

(९) इस तरह जब यह समूची टाल लद जाती है, तब वह ऊपर से लेकर नीचे तक पयार की कुट्टी मिली कादों से दो-तीन इञ्च की मोटाई में लवेड़ दी जाती है।

(१०) यह लवेड़ जब सूख जाता है, तब वह सारी टाल, ऊपर से लेकर आधी से कुछ अधिक गहराई तक, एक लंबे नुकीले लोहे से छेद दी जाती है। छेद दोनों ओर से एक-दूसरे से एक-एक हाथ की दूरी पर किये जाते हैं और उस लोहे को

चारों ओर डोलाकर वे इतने चौड़े कर लिये जाते हैं कि उनका ऊपरी मुँह तीन इञ्च से कम चौड़ा नहीं रहने पाता।

(११) यदि टाल को जल्द-से-जल्द पका लेना हो, तो उसको चारों बगल से और ऊपर से भी बाँस-फूस की टट्टियों से घेर देते हैं, जिससे बहते पवन और गिरती वर्षा से उसका बचाव हो सके।

(१२) अंत में सड़ानेवाली सामग्री का जो हिस्सा जमीन पर बिछी डालियों की ऊँचाई पर से झुककर जमीन तक उतरा हो, उसे टाल में से छुड़ाकर हटा देते हैं, जिससे बाहर की वायु का संबंध टाल के नीचेवाले खोखले हिस्से के साथ अबाध रूप से कायम हो जाय।

(१३) जहाँ-जहाँ सुविधा हो, वहाँ-वहाँ ऐसी टाल वृक्षों की गाछी के तल में लगायी जाती है, जिससे धूप के कारण उसमें की नमी के सूख जाने का अंदेशा कम हो जाय।

२२६. इस योजना में शुरू से लेकर अंत तक की जानेवाली हरएक प्रक्रिया का मकसद क्रमशः निम्न प्रकार है:

(१) जमीन पर डालियों के जाल को बिछाने का आयोजन सड़ाने की सामग्री के टाल के भीतर वायु-संचार को नीचे से लेकर कायम करने के लिए है; क्योंकि यह वायु-संपर्क यदि चारों बगलों को खुले रहने देने के जरिये आयोजित किया जाता है, तो टाल की नमी बहुत जल्द सूख जाती और नमी के सूखने पर टाल की सड़न-क्रिया फौरन ही रुक जाती है:

(२) काट-छाँट की तहें उपयुक्त क्रम से इसलिए आयोजित की जाती हैं कि उनके ऊपर आनेवाली गोबर की तहों को वायु-संचार की गुंजाइश हो जाय;

(३) इसी तरह गोबर की तहों के इस क्रम का आयोजन इसलिए है कि उनके नीचे बिछी हुई काट-छाँट की तहों को जामन का संपर्क आसानी के साथ मिल जाय;

(४) इसी तरह राख या मिट्टी की तहें समूचे टाल की सड़न-क्रिया को अभीष्ट हद तक नियंत्रित किये रहने के लिए हैं;

(५) काट-छाँट, गोबर और मिट्टी की तहों को भिगोने का आयोजन इसलिए है कि सड़न-क्रिया चालू रखने के लिए सड़ाने की सामग्री का नम रहना अनिवार्य है;

(६) इसी तरह टाल का लम्बा, चौड़ा, ऊँचा और खड़ंजा आकार उसकी सामग्री के अनुपात में उसके चारों ओर के वायु-संपर्कवाली बाहरी तह को निम्नतम हद में ला देने के लिए है, जिससे टाल के भीतर की नमी सूख जाने की गुंजाइश भी निम्नतम हद में लायी जा सके;

(७) टाल का गजपिट्ठे का आकार उसकी सामग्री को वर्षा के पानी से भीग जाने से बचाने के लिए है; (जहाँ पर वर्षा का मान सालाना ३०" या उससे भी कम हो, उन प्रदेशों में टाल के ऊपर ऐसा आकार बनाने की जरूरत नहीं; क्योंकि उतनी वर्षा से टाल का काम बनता ही है, बिगड़ता नहीं ।)

(८) टाल को कुट्टी मिली कादो से लवेड़ने का आयोजन उसमें की नमी को सूखने से बचाये रखने के लिए है, जिससे उसकी सड़न-क्रिया रुकने न पाये; और

(९) टाल में ऊपर जैसे किये जानेवाले छेदों का आयोजन उसके भीतर की सामग्री को ऐसे नियंत्रित रूप से वायु-संपर्क देने के लिए है कि वायु का वह संपर्क तो चालू रहे, मगर उसकी वजह से टाल के भीतर की नमी के सूख जाने का खतरा निम्नतम हद में रखा जा सके; और यदि अन्य किसी कारण से नमी कम भी हो जाय, तो इन छेदों के जरिये पानी या पेशाब को पाटकर वह वापस बढ़ायी भी जा सके ।

२२७. इस तरह टाल लगाने की प्रक्रिया संपूर्ण होने से दो-चार रोज के बाद ऊपर के छेदों में हाथ डालकर देखा जाय, तो

इन छेदों में गरमी काफी बढ़ी हुई मालूम देगी। टाल में पाटे गये पानी की मात्रा जब बिलकुल ठीक रहती है, तब यह गरमी जल्द-से-जल्द बनती और अधिक-से-अधिक बढ़ती है; मगर पानी जब कुछ अधिक पड़ जाता है, तब वह उस फाजिल पानी के निथर-निथरकर नीचे बैठ जाने के बाद ही बढ़ती है। किन्तु जहाँ पानी नहीं पहुँचा रहता, वहाँ तो वह बनती तक नहीं।

२२८. गरमी के बनने का मानी है, सड़न-क्रिया का शुरू होना और उसके बढ़ने का मानी है, उस क्रिया का उतना तेज होना।

२२९. नमी की सही मात्रा वह है, जितनी वह निचोड़े हुए भीगे कपड़े में शेष रहती है।

२३०. इस तरह, गरमी जितनी अधिक हो, उतनी उस टाल के बनने की प्रक्रिया कुशल माननी चाहिए। मगर गरमी नी जगह टाल में से यदि बदबू उठने लगे या उस पर मक्खियाँ भिन-भिनाने लगें, तो समझना चाहिए कि वह टाल गलत ढंग से बना हुआ है। और इसलिए वैसे टाल को उलटकर फिर से नए तरीके से बाँध लेना चाहिए।

२३१. ग्रीष्म ऋतु और शुष्क प्रदेशों में टाल की नमी कुछ विशेष रूप से सूखती है। इसलिए छेदों की गरमी जब समने लगे, तब उनमें से पानी पाटकर उसे वापस कायम कर लेना चाहिए। मगर खयाल रहे कि पानी यदि अधिक पट जायगा, तो गरमी कुछ देर से बढ़ेगी; और यदि वह सही मात्रा में पटा रहेगा, तो गरमी एकआध रोज में ही बढ़ जायगी। इस तरह गरमी जब तक बढ़ती रहे, तब तक पानी पाँच-पाँच, सात-सात रोज पर नियमित रूप से पाटते रहना चाहिए और गरमी का बढ़ना बंद हो जाय, तब समझना चाहिए कि खाद का टाल अब उलटने लायक हो चुका है; यानी अब उसने की अधिकांश

सामग्री करीब-करीब पक चुकी है और उसका केवल थोड़ा हिस्सा ही यत्र-तत्र कुछ अधकचरी हालत में छूटा हुआ है।

२३२. अब इस हिस्से को पूरा पका लेने के लिए कुदार से इस सारे टाल को काट-काटकर उसे चार फुट आगे बढ़ाकर दुबारा टलियाना चाहिए। जो हिस्सा इसमें अधकचरी हालत में बचा होता है, वह मुख्यतया टाल की कोरों पर चारों बगल छुटा हुआ होता है। इसलिए दुबारा टलियाते समय कोरों पर का हिस्सा या अधकचरा हिस्सा टाल के बीच भाग में देते जाना चाहिए और बीचवाला हिस्सा यानी विशेष पका हुआ हिस्सा नये टाल के किनारों पर जमाते जाना चाहिए। इस तरह टाल को दुबारा बाँधते समय उसमे हलका-सा पानी का छिड़काव भी, जहाँ जितना जरूरी हो, कम-बेशी मात्रा में देते जाना चाहिए। मगर इस बार अब जमीन पर डालियों का जाल बिछाने और उन पर टाल जमाने की जरूरत नहीं रह जाती; क्योंकि अब टाल के भीतर वायु-संचार की आवश्यकता बहुत ही कम रह जाती है। इसलिए बाकी सारी क्रिया पहले की तरह करके ऊपरवाला लबड़ा जब सूख जाय, तब टाल को ऊपर से छेदकर उसे पकने के लिए छोड़ देना चाहिए।

२३३. प्रारम्भ से ही सारा काम ठीक से किया हुआ रहेगा, तो पहली बार के टलियान मे दो-चार रोज के बाद गरमी आ जाती है; सात-आठ सप्ताह में टाल उलटने लायक होता और उलटने के बाद पाँच-छह सप्ताह मे वह पूरा पककर तैयार भी हो जाता है। मगर यदि इस काम के करने में कहीं कोई कसर रह जाती है, तो ऊपर लिखी हरएक प्रगति में थोड़ा-थोड़ा अधिक समय लगता है और कभी-कभी उलटनेवाली प्रक्रिया भी एक बार के बदले में दो बार करनी पड़ती है।

२३४. टाल की सामग्री पूरी पकी हुई तब माननी चाहिए, जब :

(१) उसमें से मीठी-सी खुशबू उठने लगे और बदबू तनिक भी न निकले; और

(२) यदि मुट्ठीभर खाद हाथ में लेकर जरा-सी दबायी जाय, तो वह बुरबुर बुकनी की तरह फैल जाय; यदि इसको चालनेवाली खरचाल से चाली भी जाय, तो उसकी २० में से करीब १९ गाड़ी खाद बुरबुराकर खरचाल में से चला जाय और बिना गला हिस्सा केवल एकआध गाड़ी भर ही शेष बचे।

२३५. ऐसी परिपक्व "मिश्र-खाद" किसी भी फसल को उसके जीवन के किसी भी मौके पर, निर्भयता के साथ दी जा सकती है और वह फसल को फायदा भी खूब पहुँचाती है। यह खाद यदि पर्याप्त मात्रा में मिले, तो फसल को फिर नत्रजन छोड़कर अन्य किसी तत्त्व की कमी नहीं रहती। यदि खाद के टाल में द्विदलों के पौधों अथवा मूत्र की मात्रा पर्याप्त रही, तो फिर उसमें नत्रजन तत्त्व की कमी भी नहीं रहती।

२३६. पक जाने पर खाद को खुला नहीं छोड़ना चाहिए। पाटने के समय तक टाल के ऊपर के लवेड को मरम्मत करके ठीक से टिकाये रखना चाहिए और पाटते समय भी यह खबरदारी ठीक तरह से रखनी चाहिए कि खाद अधिक समय तक खुले में न रहने पाये। मगर जल्द-से-जल्द जोतकर मिट्टी में मिला दी जाय; क्योंकि सुपच हालत में के नत्रजन का गुण यह है कि खुला रहने पर उसके ७०% तक हिस्से दो ही तीन घण्टों में उड़ जाते और वायुमंडल में मिल जाते हैं।

२३७. ऐसी खाद वर्षा के पानी को भीतर खींचकर जमीन की शक्ति बढ़ाती है, उस पानी को लम्बे समय तक भीतर रख छोड़ने की जमीन की ताकत भी बढ़ाती है और इसी कारण फसल की उपज भी काफी बढ़ती है।

२३८. प्रयोग से पता चला है कि जिस साल वर्षा अत्यन्त कम हुई और गाँवभर के खेतों की उपज एक मन की जगह केवल दस से बीस ही सेर तक हुई थी, तब इस खाद के प्रयोगवाले कोले (plot)' में धान एक मन की जगह पौने दो मन उपजा था। ऐसा भी अनुभव है कि पर्याप्त वर्षावाले साल में खाद बिलकुल न पाटे हिस्से में फसल जब केवल एक ही मन उपजी थी, तब यह खाद एक बराबर से आध इञ्च की मोटाई में पाटे हुए उसी कोले के उतने ही हिस्से में ठीक चार मन और डेढ़ इञ्च की मोटाई में पाटे हुए उतने ही तीसरे हिस्से में पूरे सात मन उपजी थी।

२३९. अब यह खाद पानी लगने का अंदेशा न हो, उन प्रदेशों में गड़हों में भी बन सकती है। गड़हों में वह कुछ तेज गति से बनती और मेहनत भी कुछ कम ही लेती है; क्योंकि गड़हों में टाल में की गरमी कुछ विशेष रूप से टिकी रह सकती है। वास्तव में खाद जो सड़ती है, उसे सड़ानेवाला माध्यम तो कीटाणु-सृष्टि की प्रवृत्ति है। हम तो केवल इस सृष्टि को जीने के संयोगों (परिमित नमी और पर्याप्त वायुसंचार) को अनुकूल बना देते हैं। और अधिक गरमी के टिकाने का मानी होता है, इस कीटाणु-सृष्टि की प्रवृत्ति को तेज स्तर पर टिकाये रखना।

२४०. इस तरह गड़हों में टाल की पहलो को कादो से लवेड़ने की जरूरत भी नहीं रहती; क्योंकि बहते पवन के झोंकों से उसका बचाव गड़हों की भीतों से ही हो जाता है, इसीलिए टाल को उतना बड़ा बनाने की जरूरत भी नहीं रहती। पाँच से छह फुट चौड़े, तीन फुट गहरे और आवश्यकतानुसार बीस से पचीस फुट तक लम्बे गड़हे इसके लिए अधिक-से-अधिक कारगर मालूम हुए हैं। खाद के ये टाल ऊँचाई में जमीन से एक-डेढ़ फुट ऊपर तक

लादने चाहिए। सड़ने पर वे नीचे की ओर दबते जायँगे और सर-जमीन के बराबर आ जायँगे।

२४१. मगर इसमें जमीन के ऊपरवाले हिस्से को पयार की कुट्टी मिली कादों से लवेड़ देना चाहिए और गड़हे के प्रारम्भिक छोर पर चार फुट लम्बी खाली जगह भी छोड़नी चाहिए, जिससे टाल को उलटने की गुंजाइश रह सके।

२४२. शेष सारी प्रक्रिया गड़हों के लिए भी ठीक वही रहती है, जो जमीन के ऊपरवाले तरीकों में अख्तियार की जाती है।

२४३. यदि खर-पात की मात्रा सात-आठ इंच की तह के मान से काफी अधिक देने की गुंजाइश हो, तो ऊपर दिये हुए दोनों तरीकों में जमीन पर डालियों की जालें बिछाने की जरूरत नहीं रहती; क्योंकि खर-पात की घनी तह के कारण वायुसंचार टाल को पर्याप्त मात्रा में ऊपर के छेदों में से और टाल के भीतर में से ही मिलता रहता है।

२४४. कुछ लोग मेहनत बचाने के खयाल से टाल उलटने की प्रक्रिया नहीं करते, फिर भी टाल काफी अधिक समय ले और वर्षा का पानी भी खाकर एकआध साल में सड़ ही जाती है। मगर इस तरह सड़ी और तीन-चार माह में सड़ायी हुई ताजी खाद के गुणों में ठीक उतना ही अंतर रहता है, जितना बासी और ताजी रोटी-दाल के गुणों में होता है; क्योंकि आखिर यह खाद खेत में कीटाणु सृष्टि का खुराक ही तो होने को है। अनुभवियों का कहना है कि इस तरह और इस तरह की खाद के फायदों में अंतर सवाये से ड्योढ़े तक पड़ता है। कम समय में पकायी ताजी खाद उस आलसी खाद से कहीं अधिक गुणकारी है।

छेद करनेवाला लोहा

२४५. अब यदि सड़ाने की सामग्री अत्यंत कम हो, तो टाल के ऊपर से छेद करनेवाले लोहे के लिए खर्च करने की जरूरत नहीं रहती; क्योंकि वह काम खाद का टाल जमाते समय में ही आवश्यक अंतरों पर बाँस के टुकड़ों को खड़े रख और अंत में उन्हें ऊपर से खींच लेने से हो जाता है। मगर सड़ाने की सामग्री यदि पर्याप्त मात्रा मे रहे, तो छेदनेवाला लोहा बनवा लेने में ही कम खर्च और अधिक सहूलियत रहती है। जमीन के ऊपरवाले टाल के लिए हमने एक ७॥ फुट लंबे और १ ३/२ इंच मोटे पाइप (पाइपों की मोटाई उनके अंदर के छेदों की मोटाई पर से मापी जाती है।) की एक छोर पर, एक ढालुआँ नोकीले लोहे के टुकड़े को रखवाकर छेद बनानेवाली जो छड़ बनवायी है, वह खूब अच्छा काम दे रही है। उसका वजन १० सेर है।

खाद की मात्रा

२४६. यह खाद प्रति एकड़ २०० गाडी (१ गाडी = १२५) तक पाटी जा सकती है। वह जितनी ही अधिक पाटी जाय, उतनी ही फसल को अधिक बढ़ाती है। एक बार यदि पर्याप्त मात्रा में पाटी रहे तो बाद में फिर हर साल वह जमीन, बहुत ही कम खाद पाटने पर भी, उतनी ही अधिक फसल देती रहती है।

२४७. मगर इतनी अधिक खाद मिलना संभव नहीं है। इसलिए होशियार किसान इसे सारे खेत में एक बराबर से न पाटकर प्रत्येक पौधे की जड़ में पर्याप्त मात्रा मे पाटते हैं। मगर अधिकतम उपज के लिए तो इस अंतिम तरीके में भी प्रति एकड़ एक सौ या पचहत्तर गाड़ी खाद देनी ही पड़ती है। हरएक किसान जानता है कि इतनी खाद जुटाना सम्भव नहीं है; फिर भी यदि समझदारी के साथ कोशिश की जाय, तो

असंभव वात भी संभव वन सकती है। यह कर सकने के लिए कुछ सुझाव यहाँ दिये जा रहे हैं, जिनकी मदद से सुविधानुसार हरएक किसान अपना-अपना मार्ग निकाल सकता है:

(१) इनमें सवमें प्रधान सुझाव है "अदायगिरी के कानून का पालन"। इस कानून का मानी है: जमीन से लिये जानेवाले तत्त्वों को उनके परिवर्तित रूप में जमीन को वापस लौटाते रहना। जैसे:

(क) सारी-की-सारी राख को खूब हिफाजत के साथ सँभालकर लौटाना;

(ख) आग तापने के लिए "धुर" जगाकर खाद-लायक सामग्री को जला न देना, वल्कि उसे जमीन को लौटा देने के लिए मिश्र खाद के टाल में देना,

(ग) सोहनी (निकौनी) की घास-पात, खेती-बारी के डंठल और पत्ते, गोशाला की नादों में का छाँट, तरकारी, फल के छिलके आदि खेती-बारी की सारी काट-छाँट का भी मिश्र-खादवाले टाल में लगा देना; और

(घ) मल-मूत्र, पाखाना-पेशाव और पशुओं के मृतावशेषों को भी खाद के काम में ले लेना (ऊन, पंख, खुर, सींग, रक्त और मोची-खाने की छाँट वगैरह शरीरजन्य पदार्थों में नत्रजन की मात्रा वहुत ही अधिक यानी १२ से १६% तक होती है और ये सभी पदार्थ खाद के लिए वहुत ही उपयुक्त भी हैं। खुर, सींग और चाम को महीन पीसकर देने से वे जल्द सड़ते हैं।)।

(२) दूसरा सुझाव है: केले, पपीते और ईख की खेती भी जहाँ-जहाँ संभव हो, वहाँ करते रहना। ये फसलें फल के साथ-साथ खाद की सामग्री भी एक वड़े पैमाने पर देती हैं। यहाँ खयाल में रखने की वात यह है:

द्विदलों के पौधे जहाँ जल्द-से-जल्द सड़ते हैं, वहीं ईख के पत्ते सड़ने में अधिक-से-अधिक समय लेते हैं। जल्द सड़ाने के लिए इन्हें गोशालाओं में गद्दों की तरह पशुओं को बिछा देने का रिवाज भी है, ताकि वे गोबर-गोमूत्र से फेंटाते रहें और कुछ जल्दी सड़ें। मगर इसमें गोमूत्रवाली मिट्टी को रोज-ब-रोज हटाते रहने में कुछ असुविधा होती है। प्रयोग करके देखा गया है कि पाखाने-पेशाब से फेंटकर इन पत्तों का टाल ऊपर से यदि कुछ विशेष खबरदारी के साथ लवेड़ दिया जाय, तो यह टाल भी अन्य खर-पात के टाल की तरह तीन ही चार माह में सड़ जाता है। सूअर का पाखाना भी मनुष्य के पाखाने के बराबर तेज काम करता दिखायी दिया है। अगर इन प्रकारों में से कुछ भी करने की गुंजाइश न हो, तब भी इन पत्तों को गोबर के घोल में ठीक से फेंटकर तह-मालाओं में पूरा गोबर देने और वायु-नमी का ठीक प्रबन्ध कर देने से ये पत्ते भी आखिर सड़ ही जाते हैं। हाँ, ये पत्ते समय तो कुछ अधिक लेते ही हैं और उलटने की क्रिया भी एक की जगह दो बार करवाते हैं। इसीलिए इन पत्तों को सड़ाने का टाल अलग से करना होता और ऊपर से लवेड़ने की प्रक्रिया भी कुछ विशेष खबरदारी के साथ करनी पड़ती है।

(३) संभव हो, तो जमीन के कुछ हिस्से में आम, लीची, अमरूद वगैरह फलों और शीशम जैसी इमारती लकड़ी की गाछी भी लगाना तथा अरहर जैसे गहरी सोरवाले अनाज की खेती भी करना। ये सब चीजें जमीन की गहराई में के जड़ तत्त्वों को सेन्द्रिय रूप में परिवर्तित करती और जमीन के ऊपरी स्तर पर खेती करने के लिए उन्हें पत्तों की खाद के रूप में ऊपर में लाकर देती भी रहती हैं; अलावा उनकी स्वाभाविक फसलें—अन्न और जलावन—भी कृषक को मिलती ही रहती हैं।

(४) खेतों की मेड़ों पर "जैंते" जैसे तेज बढनेवाले वृक्ष लगाकर जलावन का कायम का प्रबन्ध कर लेना, जिससे गोबर को जला देने से साफ-साफ बचाया जा सके। ऐसे वृक्ष खेतों पर की फसलों को, न केवल नुकसान पहुँचाते, वरन् अपने पत्ते गिराकर उन्हें पुष्ट भी करते रहते हैं। इन्हें पूरब से पश्चिम जानेवाली मेड़ों पर लगाने से फसलों का इनके छाँह में पड़ जाने का अंदेशा भी मिटाया जा सकता है।

(५) गाय-बैल के मूत्रवाली गीली मिट्टी को गोशाला में से नियमित रूप से प्रतिदिन उठाना, उसे गोबर के टाल पर पाटकर ऊपर से उस रोजवाले गोबर से ढँक देना और बाद में सारे टाल को सूखे पत्तों से ढँक देना या रोज-ब-रोज मिश्र-खाद के टाल को बाँधते जाना, इस गोमूत्रवाली मिट्टी को उसके साथ मिलाते जाना पत्तों से ढँकते जाना। (नत्रजन-तत्त्व बहुत ही जल्द उड़ जाता है और उसका प्रधान हिस्सा गोमूत्र में रहता है, इसलिए उसकी खास हिफाजत करने का यह सुझाव है। इस खबरदारी की दूसरी वजह यह भी है कि किसान के लिए पोटैशियम तत्त्व पाने का सबसे बड़ा और सर्वोत्तम जरिया भी गोमूत्र ही है।)

(६) "मिश्र-खाद" के गुण और उसकी मात्रा बढाने का और एक सुझाव यह है कि गोशाला में से प्रतिदिन उठती हुई उपर्युक्त मूत्र से भींगी मिट्टी की खाली जगह को उसी समय भरते रहने के लिए बढिया उपजाऊ दोरस मिट्टी का एक टाल गोशाला के पास बराबर बनाये रखना। (दोरस-मिट्टी पशुओं के बैठने के लिए आरामदेह होती और गोमूत्र को जल्द-से-जल्द सोखकर उसको अपने भीतर काफी समय तक संचित रखने की ताकत भी रखती है, जब कि मटियार-मिट्टी न तो पशुओं के बैठने के लिए आरामदेह है और न उसमें

मूत्र को जल्द सोख लेने की ताकत ही है। "वलसर-मिट्टी" (वलुआ मिट्टी) यद्यपि पशुओं के लिए आरामदेह होकर मूत्र को झट से सोख लेती है, फिर भी उसमें मूत्र को संचित रखने की ताकत नहीं है। उसकी इस कमी के कारण मूत्र जमीन की गहराई में उतर जाता है और खाद के टाल में मिलाने के लिए किसान के हाथ नहीं आता।)

२४८. यह गोमूत्रवाली मिट्टी यदि "मिश्र-खाद" के टाल को पर्याप्त मात्रा में मिलती रहे, तो "खर-पात, गोबर और मिट्टी" की तहमाला में से मिट्टी की तह को यथासंयोग पतली कर सकते या बिलकुल ही हटा सकते हैं।

२४९. यह खाद जिन खेतों में पटनेवाली हो वे खेत, यदि वलसर-मिट्टीवाले हों, तो खाद के टाल में की मिट्टीवाली तह के लिए गोशालावाली मिट्टी के अतिरिक्त मटियार-मिट्टी का एक अतिरिक्त टाल भी खादवाले टाल के पास कायम रखना चाहिए। जहाँ संभव हो, वहाँ यह मिट्टी नदी-नाले या पोखरों में से लानी चाहिए।

२५०. यह सारी प्रक्रिया खाद की मात्रा को हरएक उपाय से यथासंभव बढ़ा लेने के लिए है। अधिक-से-अधिक खाद बनाकर जमीन का "पोत" (गठन=Texture) एक बार यदि बाँध लिया जायगा, तो बाद में वह जमीन बहुत कम खाद से भी हर साल अधिक-से-अधिक फसल देती रहेगी।

२५१. 'पोत' शब्द बजाजी व्यवसाय की परिभाषा में से लिया हुआ है। उस दिशा में यह मुख्यतया कपड़े की बुनावट गफ है या झिरी अथवा अच्छी है या खराब, यह प्रकट करने के लिए व्यवहृत होता है; जैसे कि "इस कपड़े का 'पोत' बहुत अच्छा है" ऐसा कहने का मानी होता है कि "इस कपड़े की बुनाई बहुत ही गफ" अथवा "बहुत ही कार्यानुकूल" है।

२५२. इसी तरह जमीन से सम्बद्ध व्यवहार मे "पोत" शब्द का मानी होगा : "पानी को जल्द-से-जल्द सोखने या न सोखने, उसे संचित रखने या न रखने, फसलों की सोरों को झट से फैलने का अवकाश देने या न देने और वायुसंचार की गुंजाइश पर्याप्त पैमाने पर देने या न देने के गुण-अवगुण रखनेवाली।"

: १० :

"तीव्रखेती" और धानखेती की "जापानी-पद्धति"

तीव्रखेती

२५३. 'तीव्रखेती' शब्द का अर्थ है: "अटूट और अविरत प्रक्रिया से अधिक-से-अधिक फसल उपजानेवाले तरीके की खेती"। इस तरीके की खेती में खेत को खाली (परती) नहीं रहने दिया जाता; एक फसल कटने के पहले दूसरी और जब-तब तीसरी भी फसल लगायी रहती है और कई एक टुकड़ों से तो साल भर में आठ-आठ और नौ-नौ तक फसलें भी ली जाने की बात पढ़ने में आती है।

२५४. व्यवहार में इस तरीके की खेती जापान के आम कृषि-विस्तार में देखने को मिलती है और हमारे देश में वह शहरों के नजदीक कुछ हद तक कोइरी (तरकारी उपजानेवाली एक जाति) लोगों के बीच देखने को मिलती है; जब कि विवेचनात्मक शास्त्र के रूप में तो वह और भी दुर्लभ है और देखने को मिलती भी है तो छितराये हुए रूप में मिलती है, यदि समझदारी के साथ पाश्चात्य कृषि-साहित्य को हम पढ़ें और उसमें से इसे ग्रहण कर लेने की वृत्ति रखें।

२५५. मालूम होता है कि सारे जापान देश की तंग हालत ने इस तरीके को वहाँ विकसित किया, उस सारे देश में इसे फैलाया तथा इसके सतत व्यवहार ने इसको शताब्दियों से वहाँ जीवित रखा है

पाश्चात्य देशों के पुरुषार्थ ने इसे वैज्ञानिक क्षेत्र में प्रकट किया है और कृषि-साहित्य में इसे स्थापित किया है।

२५६. खेती-बारी का यह तरीका पाश्चात्य जीवन में इसलिए नहीं उतरा मालूम होता कि उन मुल्कों ने कृषि-व्यवसाय को यंत्राधारित बना डाला है और खादों का उन्होंने रासायनीकरण कर डाला है। और तीव्रखेती, न तो यंत्रों के जरिये से अब तक संभव बन पायी है और न रासायनिक खादों के जरिये से उसके संभव बनने की गुंजाइश ही है; क्योंकि पिछले प्रकरणों से हम जान चुके हैं कि जमीन में की केशिका-जाल के निर्माण करनेवाले कीटाणु-समुदाय को ये खादें मार देती हैं और बगैर केशिका-जाल के पूर्ण रूप से विकसित हुए जमीन के भीतर में का वायुसंचार दोनों कार्यों को (कटी फसल की सोरों को सड़ाने का और खड़ी फसल की सोरों को पोपने का कार्य) एक साथ में निभाने लायक पर्याप्त नहीं हो पाता और मुख्यतया इसी कारण को लेकर हरएक दो फसलों के बाद खेतों को कुछ समय तक आराम देने की जरूरत पड़ती है।

२५७. तीव्रखेती के नियम कौन से हैं, उन्हें हम क्रमवार देखें और साथ साथ मिसाल के तौर पर उन्हें धानखेती के जापानी तरीके के साथ मिलाते चलें। यद्यपि उन सभी नियमों का वर्णन पीछे दिया जा चुका है, फिर भी प्रत्यक्ष व्यवहार के मिलान के साथ देखने से उन पर विशेष प्रकाश पड़ना सहज संभाव्य है। उन नियमों की फेहरिस्त इस प्रकार है :

(१) पहला नियम है, बीजों का देश, काल और परिस्थितियों के अनुकूल उत्तमोत्तम होना;

(२) दूसरा नियम है, प्रकाश और वायु यथेष्ट मात्रा में पाने की सुविधा पौधों को देना;

(३) तीसरा नियम है, उनको यथेष्ट मात्रा में यथासमय पानी देना;

(४) चौथा नियम है, जमीन का "पोत" ठीक तरह से बँध चुका हो तभी इस तरह की खेती करना और साथ-साथ हर फसल को उसकी आवश्यकतानुसार हरएक तत्त्व की खाद पर्याप्त मात्रा में देते रहना;

(५) पाँचवाँ नियम है, पौधों के साथ ठीक उसी तरह का व्यवहार रखना, जिस तरह का व्यवहार हम सजीव और अत्यंत कोमल प्राणियों के साथ रखते हैं। इसका अर्थ है "कृषक की ओर से पौधों को तनिक भी तकलीफ न होने देना; बल्कि उनकी हिफाजत ठीक ढंग से करते रहना"।

२५८. अब इन नियमों को हम क्रमशः ब्योरे के साथ और जापानी धानखेती के साथ मिलान करके देखें :

बीज

२५९. अधिक-से-अधिक फसल उपजाने के लिए बीज ऐसे होने चाहिए कि उनके पौधे—

(१) अधिक-से-अधिक बिआन दें;

(२) बाले खूब लंबी-लंबी और काफी वजनदार दें;

(३) भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में भी निरोग रहें; और

(४) बाल लगने पर या आँधी आने पर वे मुड़कर जमीन पर लेट न जायँ, ताकि अधिक-से-अधिक फसल उपजाने के सभी संयोग उनको प्राप्त हों।

२६०. अब जो भी बीज सामान्य तौर पर खरीदने को मिलते हैं, उनमें ऊपर में के कुछ-कुछ गुण तो होते ही है—कुछ में कम तो कुछ में अधिक और कुछ मे एक तो कुछ में अनेक; मगर सभी गुण एक साथ में मौजूद हों और एक बराबर से विकसे हुए हों, वैसे बीज कहीं नहीं मिलते। वैसे बीज प्रयत्नपूर्वक खुद से बनाने

होते हैं और वन जाने के बाद भी इन गुणों को टिकाये रखने के लिए खास खबरदारी भी रखनी होती है। ज्यों-ज्यों फसल का मान बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों खबरदारी के मान को भी बढ़ाते जाना होता है।

२६१. जापानी कृषक बीजों की अपनी ख्वाहिश की नस्लों को तो बना चुका ही है; और हर साल उन्हें नमक घुले नमक गलाये हुए, भर बालटी पानी में डुबो-डुबोकर और पानी के ऊपर आनेवाले उनमें के खबरे और अधकचरे हिस्से को छांट-छाँटकर उस पानी की तह में बैठनेवाले उनके भारी हिस्से को ही बोने के काम में लेता है। उसकी किस्में नाटी हैं कि जिससे उनके पौधों की मुड़कर जमीन पर लेट जाने की संभावना यथा-शक्य घटी है। उनकी बालें भी खूब लंबी लंबी होती हैं और बालों पर के दाने भी पुष्ट, लसदार और खूब पौष्टिक होते हैं. परिणामस्वरूप हमारे देश में धान की औसत उपज जब प्रति एकड़ दस से पन्द्रह मन होती है, तब जापान की औसत उपज प्रति एकड़ चालीस से पैंतालीस मन तक जाती है।

२६२. जापानी कृषक ने अपनी ख्वाहिश की नस्लें अनेक वर्षों के प्रयत्न से अपने आप बना ली है: हमें भी यह तरीका अपनाना चाहिए। ऐसा करना अशक्य नहीं है। यह अत्यन्त कठिन भी नहीं है।

२६३. ऐसा करने के लिए पेड़-पौधों के पोषण तत्त्वों का पीछे दिया हुआ गुण-वर्णन हमारा पथप्रदर्शन कर सकता है। उसके अलावा विशेष ख्याल करने की दो-एक बातें ये भी हैं कि :

(क) बिडार (धान के पौधों की नर्सरी) में बीज दूर-दूर छितराकर बोने से और बाद में पौधों को खेत में भी दूर दूर-दूर रोपने से पौधे नाटे भी रह जाते हैं, खूब मोटे भी होते हैं,

और बाल भी खूब लंबी-लंबी धरने योग्य होती हैं; और इसी तरह,

(ख) बीज के लिए बड़ी-से-बड़ी, पुष्ट और तंदुरुस्त बालों को खड़ी फसल में से ही चुन-चुनकर उठाने से नस्ल सुधारने के काम में वेग मिल सकता है।

२६४. जापानी कृषक को दूर-दूर रोपने के कारण बीज प्रति एकड़ खेत के लिए केवल ढाई से चार ही सेर लगता है, जब कि हम लोग बे-वजह प्रति एकड़ हर साल बीस से तीस सेर खपाते रहते हैं। बिहार में जापानी कृषक बीस से तीस एकड़ खेत के लिए २ मन बीज खेत में गिराता है। जापान की जमीनें हमारी जमीनों की तुलना में आमतौर पर कमजोर हैं। हमारे बीज बोने और खेत रोपने के मान हमको ही खुद के अनुभव से बैठा लेने होंगे।

२६५. जापानी मिसाल का उपयोग हमें केवल अपने मार्ग-दर्शन भर करना चाहिए—अपनी प्रगति की सीमा बाँधने के लिए या उस पर रोक लगाने के लिए नहीं। खयाल रहे कि जापान की औसत उपज जब ४० से ४५ मन ही है, तब हमारे देश की (दक्षिण भारत के "कुर्ग" जिले के "मर्करा" नाम के गाँव की) जमीन ने पिछले तीसरे वर्ष प्रति एकड़ १४७) तक धान की फसल दी थी, जिसके लिए उस कृषक को हमारी भारत सरकार ने "कृषि-पंडित" की उपाधि और पाँच हजार रुपये का पुरस्कार दिया था।

२६६. अनेक गुनी फसल उपजाने की गुंजाइश अच्छे खेतों के लिए भी है और कमजोर माने जानेवाले खेतों के लिए भी है; पटवन की सुविधावाले खेतों के लिए भी है और बगैर उस सुविधावाले खेतों के लिए भी है; मालमवेशी की खाद काफी उपजानेवाले किसानों के लिए भी है और उस सुविधा बगैर के किसानों के लिए भी है। आत्मविश्वास की नजरों से इस पुस्तक

को जिन्होंने पढ़ा है, उन्हें यह गुंजाइश विगत प्रकरणों में दिखाई दे चुकी होगी। आत्मविश्वास के जमाने में हमारे देश ने जो प्रयोग किये थे और जिनका जिक्र जापान के विज्ञान में भी अब तक नहीं दीख पड़ा है, उनमें की एकाध मिसाल भी यहाँ पर दे देना भावी प्रयोगकारियों के लिए उपयुक्त होगा।

दक्षिण भारत में एक कहावत प्रचलित है कि "अत्यन्त पक जाने पर दाना बीज-लायक नहीं रहता।" इस कहावत के मुताबिक प्रयोग करने पर हमको भी कुछ अनुभव हुआ कि इस कहावत में कुछ तथ्य होने की सभावना है। मगर अंतिम निर्णय पर आने के लिए यह प्रयोग अनेक हाथों से होना जरूरी है और अनेक बार होना भी जरूरी है; क्योंकि यदि सत्य ठहरा, तो इस कहावत मे भी फसल को कुछ बढाने की गुंजाइश दीखती है।

२६७. उत्तम बीज के बारे में यह बात भी है कि बीज कमजोर रहे, तो बाद की हिफाजत कितनी ही परिपूर्ण और अच्छी रहने पर भी सर्वोत्तम परिणाम उसमे से कभी नहीं मिल सकता। उत्तम बीज की बात जिस तरह सबसे पहली रखी गयी है, उसी तरह वह सबसे अधिक महत्त्व की भी है।

यथेष्ट प्रकाश और वायु का प्रबन्ध

२६८. प्रकाश और वायु के लिए पौधों को जरूरी से भी कुछ अधिक-अधिक दूरी पर बोना और रोपना होता है। यह बात हर-एक कृषक जानता है कि बोवाई या रोपनी जब हिसाब से अधिक घनी हो जाती है और साथ-साथ जमीन भी जरा मजबूत रहती है, तब पौधे बड़ी तेजी के साथ ऊँचे भागते हैं; मगर वे हो जाते हैं पतले और कमजोर। जब कि दूर-दूर बोआने-रोपाने पर उनकी संख्या तो घटती है, मगर वे मोटे और पुष्ट बनते हैं, उतने ऊँचे भी नहीं भागते हैं और झाड़ भी लंबी-चौड़ी धरते हैं

ताकत उनमें जमती है। इससे कुल मिलाकर उस खास फसल की मात्रा कम होने की संभावना अतीव सीमित हो जाती है, जब कि उस फसल के कटने के पहले उसी खेत में दूसरी और तीसरी भी फसल लगा देने की गुंजाइश मिल जाती है, जिससे साल भर की कुल फसलों की समग्र उपज अन्य तरीके की तुलना में काफी अधिक बढ़ जाती है और कम-कम समय के अन्तर पर फसल-पर-फसल मिलते रहने की सुविधा भी इस गरीब श्रमिक-वर्ग के लिए बड़ी ही आशीर्वाद रूप बन जाती है।

पानी ठीक से देते रहने का प्रबन्ध

२६९. जापानी कृषक के लिए पानी का प्रबन्ध तो आला दर्जे का बना-बनाया मौजूद है और इसीलिए उसका अभ्यास भी फसल-पर-फसल उठाते जाने का बन गया है। यद्यपि हमारे कृषक के लिए वैसा प्रबन्ध अब तक नहीं बना है, फिर भी हम देखते हैं कि खरीफ के बाद वह रबी या "छींटे" (खरीफ की फसल खेत में मौजूद रहते हुए उसमें मसूरी, तीसी आदि रबी की फसल के लिए बीज छींट देने से मिलनेवाली फसल को "छींटा" कहते हैं) की दूसरी फसल भी उपजाता ही है। तो अब हमको करना यह है कि बगैर पानी के भी इन दोनों फसलों की मात्रा को अधिक-से-अधिक बढा लेने के शेष सभी उपायों को हम काम में लायें; क्योंकि यह बात तो अब हम जान चुके हैं कि बगैर पटवन के प्रबन्ध के भी फसल का मान अनेक गुना बढ़ाया जा सकता ही है।

जमीन का "पोत" ठीक तरह से बाँध लेना

२७०. तीव्रखेती के लिए यह नियम अनिवार्य है। बगैर यह किये तीव्रखेती हो ही नहीं सकती; क्योंकि पोत बाँध लेने का मानी होता है कि :

उसकी श्वास लेने की शक्ति को यथासंभव अधिक-से-अधिक बढ़ा लेना। यह कर लेने पर साथ-ही-साथ उसकी पानी को अपने भीतर खींच लेने की शक्ति उसको अपने भीतर में टिकाये रखने की शक्ति और लगनेवाली फसल की सोरों को फैलाने की उसकी शक्ति भी बढ़नी ही है। परिणामस्वरूप उसकी फसल उपजाने की शक्ति भी साथ-ही-साथ बढ़ना स्वाभाविक ही है।

जमीन की श्वास लेने की शक्ति को बढ़ा लेने का अर्थ होता है, उसके केशिका-जाल के गठन को यथासंभव अधिक से-अधिक परिपूर्ण कर लेना; यानी उसमें की कीटाणु-सृष्टि की संख्या को यथासंभव बढ़ा लेना। यानी वह जमीन जितनी सेंद्रिय खाद पचा सके, उतनी सेन्द्रिय खाद से उसे भर देना।

२७१. इतना काम जापानी कृषक, अपने युगों के प्रयत्न से कर चुका है। हमको भी चाहिए कि हरएक उपाय से, अपने-अपने खेतों के "पोत" को हम लोग भी, यथाशीघ्र बांध लें। ऐसा करने के कई उपाय, "मिश्र-खाद" वाले प्रकरण में सुझाये जा चुके हैं। अलावा, हरी खादों का इलाज भी हरएक कृषक के लिए अत्यन्त सुलभ और अत्यन्त फायदेमंद है। अगहनी फसलवाले खेतों के लिए (वे खेत, जिनमें वर्षा के मौसम में पानी लगा रह सकता है और जिनमें अगहनी फसलवाला धान उपजाया जा सकता है) तो हरी खादों को उपजाकर सड़ाने की समस्या ही नहीं है। यदि उनमें पानी की आर्द्रता ठीक से टिकी, तो जोत देने के बाद ये खादें, चार से आठ रोज में सड़ जाती हैं और इस बात को समझदार कृषक जानते भी होंगे; मगर भदइया खेतों के लिए भी उनको हिम्मत बाँधकर प्रयोग करने चाहिए। खेतों के एक छोर पर गड्ढा बना-कर उनमें समूचे खेत की हरी खाद की फसल सड़ायी जा सकती

है और उसी खेत में वाद में लगनेवाली रवी की फसल पाटी जा सकती है। इस वात पर से दिल छोटा करने की कोई जरूरत नहीं कि उसी साल की खरीफ फसल को उस खाद का फायदा नहीं मिल सकता। खयाल में रखने की वात तो यह है कि ऐसी करीव सभी सेन्द्रिय खादों का असर अनेक साल तक टिकता है और उन सभी फसलों को फायदा पहुँचता रहता है। और इन सवसे भी अधिक महत्त्व तो इस वात में है कि इन सभी खादों से खेतों के "पोत" क्रमशः वँधाते जाते हैं और उनकी कम-कम खाद से अधिकाधिक फसल देते रहने की ताकत जमती जाती है।

२७२. अव इस वात को नहीं भूलना चाहिए कि दुरुस्त और पुष्ट जीवन के लिए खेतों को भी अन्य सजीव सृष्टि की तरह सभी तरह के पोषक तत्त्वों की जरूरत होती है। इसलिए हरी खाद नियमित रूप से उपजाकर पाटते रहने पर भी "मिश्र-खाद" वाले प्रकरण मे वताये हुए एक भी मद के पोषक पदार्थों की अवगणना कृषक को नहीं करनी चाहिए।

२७३. इस तरह खेतों के "पोत" को वाँध लेने का मतलव होगा कि वाद में डाल-पात, खर-कतवार और मल-मूत्र जैसी काट-छाँट के वदले में उनमें के तत्त्वों के वरावर वजन से वढ़िया पयार और वढ़िया साली और रवी के अन्न साल-साल नियमित रूप से देते रहने की ताकत खेतों में जमाना।

पौधों के साथ मानवता का व्यवहार

२७४. इसमें सवसे अधिक महत्त्व का समय, पौधों का वाल्य-काल है। उस समय की हिफाजत यदि कमजोर रही, तो वाद में कितना भी करने पर फसल देने की वह ताकत पौधों में नहीं आती, जो प्रारंभिक हिफाजत से आती है। जापानी कृषक

अपने खेतों का पोत भी बाँध चुका है, अपने देशकाल के लायक बीज भी बना चुका है और प्रकाश, वायु और पानी का प्रबन्ध भी उसके लिए जमानों से सहज बन चुका है। इसलिए अब ऊँची फसल के लिए उसके देश का मार्गदर्शक मंत्र बना है :

"सफलता का ७०% आधार बिड़ार पर है।"

२७५. और बिड़ार काल के बाद में भी, पौधों की हिफाजत वह इतनी कोमलता के साथ करता है कि हमारे लिए वह सारा-का-सारा तरीका जानने लायक और अनुकरण करने लायक बन जाता है। इसलिए उस सारे तरीके को, ठीक प्रारंभ से ही, इस ब्योरे के साथ यहाँ पर दे रहे हैं :

(क) वह बिड़ार की जोताई इतनी उत्तमता से करता है कि उस खेत में एक भी ढेला न रहने पावे और सारा-का-सारा खेत धूलि-धूलि-सा हो जाय।

(ख) उसमें बीज गिराने के लिए वह ऊंची उठी हुई क्यारियाँ बनाता है, जिनके बीच-बीच में आमदरफ्त के लिए नालियाँ रहती हैं। क्यारियों की चौड़ाई चार-चार फुट और लम्बाई दस-दस, पन्द्रह-पन्द्रह फुट तक रखी जाती है और नालियों की चौड़ाई कुदार की एक छेव के बराबर और गहराई करीब ९ इंच रहती है। इन नालियोंवाले हिस्सों की मिट्टी को क्यारियोंवाले हिस्से पर दे देने से नालियों को गहराई भी मिल जाती है और क्यारियों को ऊँचाई भी मिल जाती है। ये नालियां एक साथ तीन काम देती हैं :

(१) पानी पाटने का इंतजाम उनके जरिये हो पाता है;

(२) सोहनी के लिए आमदरफ्त उनसे ही चल्कर होती है, जिससे पौधे पैरों के तले दबजाने से बचाये जा सकते हैं;

(३) वर्षा जब जोरों की होती है, तब वह फाजिल पानी इन नालियों में से होकर बह जाता है और क्यारियों की जमीन फटी

हो जाने से (यानी दब जाने से) बची रह सकती है। इससे रोपने के लिए पौधों को जब उन पर से उखाड़ा जाता है, तब उनकी सोरें बिलकुल टूट जाने से काफी हद तक बचायी जा सकती हैं।

(ग) वर्षा यदि ठीक समय पर न हुई, तो तुरंत वह बीजों को पानी भी पाटता रहता है और यह काम भी खूब मुलायमत के साथ करने के लिए वह एक फौवारेदार टोंटीवाले कनस्तर को काम में लाता है, जिससे पानी पचासों सुराखों में से गिरता है और उसके गिराव से पौधों की सोरों को चोट नहीं पहुँचती।

(घ) धान के पौधों के बीच एक भी बेकार पौधे को वह बढ़ने नहीं देता।

(च) बिडार में खाद भी वह काफी पाटता है और उसे तीन हिस्से करके पाटता है; जैसे—(१) एक तो जोताई के साथ; (२) दूसरे क्यारियों के ऊपर और (३) तीसरे पौधों के बढ़ाव में यदि कोई कमी दिखायी दे, तो उसकी पूर्ति करने लायक तत्त्व वह बाद में भी पाटता है।

क्यारियों के ऊपर वह खाद इसलिए पाटता है कि पौधों की सोरें जमीन की सतह पर ही फैल सकें और रोपने के लिए उखड़ने पर उनमें की काफी सोरें आबाद हालत में मिल सकें।

(छ) रोपने के लिए पौधों को उखाड़ने की और उनकी सोरों पर सटती हुई मिट्टी को धोकर छुड़ाने की उसकी क्रिया भी उतनी ही मुलायमत के साथ होती है कि उनके तने चुटैल होने से बच जाते हैं। रोपने के उन पौधों की लच्छियाँ भी वह उनमें ही से कुछ को बंधन के काम में लेकर नहीं बाँधता, मगर उसके लिए अन्य किसी साधन का उपयोग करता है, ताकि पौधे मसुराहट से बचाये जा सकें।

(ज) उसकी रोपने की क्रिया में भी इतनी ही खबरदारी रहती है। पौधों को अपने हाथ के अंगूठे और बगल की दो उँगलियों के बीच धरकर, उँगलियों को जमीन में वह पहले पैसाता है, ताकि पौधों की सोरें बाद में जा पावें और जमीन में सीधी और खड़ी जा हालत में पैस सके, जिससे बाद में सीधी और खड़ा हो आने में उनकी शक्ति और समय का जो व्यय होता है, वह बच जावे।

इन सभी खबरदारियों का परिणाम यह होता है कि पौधे जमी हालत से उखड़कर दूसरी जगह पर रोपने पर भी मुरझाते तो नहीं ही हैं, उदास तक नहीं होते और रोपने के साथ-साथ अपने असली रंग से तेजी के साथ बढ़ने लगते हैं।

(झ) वह रोपनी भी डोरी बाँधकर सीधी लाइनों में करता है, ताकि बीच में से आने-जाने का मार्ग रहे और कमाई करने में पौधों को हानि नहीं पहुँचने पाय।

पौधों की लाइनें वह आठ से बारह इंच की दूरी पर लगाता है और लाइनों में पौधों के बीच का अंतर ६" से ८" तक का रखता है, ताकि दोनों बाजू से वे सीधी लाइनों में रहें। अधिक बियान देनेवाली किस्में दोनों बाजू से अधिक दूरी पर रोपी जाती हैं और कम बियानवाली किस्में कम दूरी पर रोपी जाती हैं।

(ट) रोपनी के बाद भी पानी और खाद में से जब-जब जिस-जिस चीज की जरूरत पड़ती है, तब-तब पौधों को वह चीज वह फौरन देता रहता है।

(ठ) पौधों के जम जाने के बाद उनको लाइनों के बीच दोगों (Interspaces) में "बखर" नाम के एक पहियेदार औजार को पौधों में फूल लगने तक हर पन्द्रह रोज पर वह घुमाता रहता है, जिससे खेत की मिट्टी में कुछ प्राणवायु का प्रवेश भी होता है और खेत की मिट्टी कुछ उलट-पुलट-सी हो भी

१२८

जाती है। इससे उसकी मिट्टी के पोषक तत्त्वों की विघटन-क्रिया तेज होती है। पौधे विशेष रूप से पुपकर तेज गति से बढ़ते हैं।

खुलासा : कुछ लोगों का कहना है कि इस क्रिया से पौधों का बियान भी बढ़ता है और बियानवाले वे पौधे पहले के तनों के साथ-साथ फल भी जाते हैं।

२७६. "बखर" नाम का यह औजार "गांधी स्मारक निधि, बिहार-शाखा, कदमकुआँ, पटना में" से पन्द्रह रुपये में मिलता है और उसका उपयोग भी बहुत आसान है।

२७७. अब धान की नस्ल को ऊपर लिखे सभी गुणों से युक्त किस तरह बनाया जा सकता है, इस बात को लें। वास्तव में धान की भिन्न-भिन्न तरह की नस्लें, उस-उस प्रदेश के जलवायु के अनुकूल सभी क्षेत्रों में मौजूद हैं ही। यदि खाद और सेवा पर्याप्त मात्रा में मिले, तो उन सभी नस्लों की, बियान और फसल देने की ताकत भी बढ़ती ही है। मगर इन बातों की कमी रह जाती है :

(क) खाद और सेवा पर्याप्त पाने पर वे पौधे खूब ऊँचे उठ जाते हैं और उनकी बालें तनों से बाहर तक न पहुँचकर भीतर-ही-भीतर फँसी रह जाती हैं; यानी पारिभाषिक शब्दों में कहें, तो वह फसल "ढेड़िया जाती है" और यदि

(ख) बालों को बाहर लाने का प्रयत्न किया भी रहे, तो उनके बोझ से पौधे जोरों की हवा चलते ही मुड़कर जमीन पर लेट जाते हैं, जिससे फसल की बढ़ती में कुछ कमी आ जाती है।

२७८. इन दोषों में से फसल के "ढेड़िया जाने" का निवारण तो फास्फरसयुक्त खाद की मात्रा को कुछ बढ़ा देने में और उसे

ठीक समय पर पाट देने में है; जब कि पौधों के लेट जाने का निवारण उनको खूब मजबूत बनाने में है और उनकी नस्ल को यथासंभव नाटी बना लेने में है। ऐसा करने के उपाय ये हैं:

(१) रोपनी के घनेपन को कम कर देने से पौधे मजबूत भी होते हैं और नाटे भी रह जाते हैं। इसके लिए पौधों के रोपने की दूरी को बढ़ाना चाहिए या हरएक "गब" (Blump) में रोपानेवाले पौधों की संख्या को कुछ घटा देना चाहिए।

(२) खाद में पोटैशियम तत्त्व की मात्रा कुछ बढ़ा देनी चाहिए। पशुओं के मूत्र में यह तत्त्व सबसे अधिक सुपच रूप में है और सबसे अधिक सुलभ भी।

(३) जिन खेतों पर से अति-वृष्टि का पानी या पहाड़ों पर से उतरा हुआ या अन्य पानी बहता है, उन खेतों को मालूम होता है कि कुछ "चूना तत्त्व" की खाद भी देनी पड़ेगी। मगर इस तत्त्व के संबंध में विशेष जानकारी आगे के प्रकरण में दी जायगी।

२८९. पोटैशियम तत्त्व और चूना तत्त्व का गुण पौधों को पुष्ट और मजबूत करना है।

५ ५ ५

: ११ :

बीजों की सर्वोत्तम नस्ल बनाना

२८०. बीजों में यदि ताकत न रहे, तो जमीन कितनी ही बनायी हुई क्यों न हो, फिर भी पौधे फसल उतनी नहीं दे सकते, जितनी हम चाहते हैं। पूरी फसल के लिए बीजों में ताकत की अनिवार्य आवश्यकताएँ इस प्रकार होती हैं :

(१) वे अधिक-से-अधिक "वियान" दे सकें;

(२) वे अधिक-से-अधिक दानेदार और अधिक-से-अधिक वजनी "वालें" दे सकें;

(३) वालों के बोझ से या हवा के झोंकों से वे पौधे न तो दबें और न जमीन पर लेट ही जायँ;

(४) फसल के कटने तक वालें और पौधे बिलकुल नीरोग भी रह सकें;

(५) पानी की कमी-बेशी को भी सह सकें।

२८१. इन गुणों के अलावा, उन बीजों की फसल यदि जल्द-से-जल्द पककर कटने लायक हो जाती हो (यानी बीज early variety के हों) तो और भी अच्छा; क्योंकि तीव्र खेती में परिपूर्ण खाद के कारण पौधे बहुत ही सघन हो जाते हैं और बगैर उपर्युक्त गुण के खरीफ के बाद छिद्लों की रब्बी फसल ("छींटों" की फसलयानी खरीफ की खड़ी फसल के बीच, छिद्लों के बीज छींट देने से होनेवाली फसल) लेने का मौका नहीं मिलता और यह फसल लेना इसलिए बहुत महत्त्व रखता है कि उससे न केवल किसान को कुछ विशेष नाज मिल जाता है, बल्कि

उसके साथ-ही-साथ आगे की फसल के लिए वह ज़मीन फिर से पुष्ट भी हो जाती है।

२८२. गुण-विकास के तरीके

(१) इसके लिए सबसे पहले करने के काम ये हैं :

(क) स्थानीय नस्लों की दो-तीन ऐसी किस्मों को चुन लें, जिनमें ऊपर लिखे अधिकाधिक गुण मौजूद हों, और

(ख) बीजों के लिए उन नस्लों की अच्छी-से-अच्छी बालों को एक-एक करके चुन-चुनकर, खड़ी फसल में से तोड़ लें।

(२) उन बीजों को अलग-अलग तरह की मिट्टीवाले कई खेतों में बोकर विकसाये और जहाँ संभव हो वहाँ, उनको कई गाँवों में या थानों में भी विकसाये और उनको आपस मे अदल-बदल भी करते रहें।

इससे बीजों में अदृष्ट तत्त्वों की कमी की संभावना घट जावेगी और आये दिन वह नस्ल गुण मे एक-पर-एक नहीं गिरेगी।

२८३. पेड़-पौधों को मजबूत बनानेवाले तत्त्व

पेड़-पौधों को मजबूत बनाने के लिए पोटैशियम और चूना तत्त्व का विशेष खयाल रखना होता है और उत्तम कोटि का सुपच पोटैशियम सर्वाधिक मात्रा मे पाने का सहज साधन गाय-बैल का मूत्र है।

२८४. फसल के उच्चतम मान तक पहुँचने के लिए :

(१) सेन्द्रिय काट-छाँट को यथाशक्य बचावें, बढावें और खाद के काम में लें।

(२) हरी खादों की फसलों को हर साल उगा-उगाकर जोतते रहने से न चूकें, सेन्द्रिय पदार्थ की मात्रा को खूब बढाने का सुलभ तरीका यही है।

(३) इस बात को भी न भूलें कि सेन्द्रिय प्रणाली में हड्डियों की और चूना तत्त्व की खाद भी अनिवार्य है।

(४) इन सभी खादों को सड़ा लेने में तनिक भी कसर न रहने दें।

(५) बीजों को खड़ी फसल में से चुन-चुनकर लेने की बात भी न भूलें। केवल इसी एक उपाय से भी फसलें काफी अधिक बढ़ायी जा सकी हैं।

(६) खेती-बारी का एक-एक काम ठीक समय पर करने से कभी न चूकें।

(७) ध्यान रहे कि फसल का मान ज्यों-ज्यों बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों हिफाजत के एक-एक काम को, अधिकाधिक परिपूर्णता के साथ और ठीक समय पर करते रहने की आवश्यकता भी बढ़ती जाती है। उपज के मान को सर्वोच्च सीमा तक बढ़ाते जाने की यह अनिवार्य शर्त है।

卐 卐 卐

: १२ :

जानने लायक कुछ फुटकर बातें

२८५. जोत-कोड़ से कौन-कौन प्रक्रियाएँ संपन्न होती हैं?

(१) जमीन की अंदरूनी तहें बाहरी वायुमंडल के सीधे
संपर्क में आ जाती हैं, जिससे जमीन के अंदरूनी भूभाग को प्राण-
वायु (ओषजन) पर्याप्त मात्रा में हासिल होती है।

(२) "हाल फटने के पहले" (यानी जमीन की नमी सूखने
के पहले) खेत पर यदि हेंगा भी चलाया रहे, तो वह "हाल"
और उसकी गरमी भी देर तक टिकती है।

(३) इन तीनों (प्राणवायु, हाल और गरमीवाली) सुविधाओं
के असर से जमीन में छूटी हुई अगली फसल की सोरें नयी
फसल बोआने-रोपाने के पहले सड़ जाती हैं और उस फसल के
लिए खाद का काम देती हैं। जब कि जमीन में हाल रहते हुए
यदि हल और हेंगा नहीं चलाया रहे, तो जमीन में छूटी हुई सोरों
को उपर्युक्त तीनों हालतें एक साथ में हासिल नहीं होतीं और वे
सोरें नयी फसल बोआने-रोपाने तक में, चाहे बिलकुल ही नहीं सड़
पातीं या वे अधूरी सड़ सकती हैं और नयी फसल के साथ पानी
और ओसजन के लिए स्पर्धा करने लगती हैं, जिससे नयी फसल
को उसके जन्मकाल से ही बाधा पहुँचने लगती है। उस समय
की बाधा बड़ी हानिकारक भी होती है। फसल के उत्तम मान
तक पहुँचना हो, तो इस बाधा को भी हर उपाय से हटाना होगा।

"चौमास" और "हरी खादों" की तुलना

२८६. खेत को "चौमास" रखने का मानी है, एक फसल के चार मास और उससे फसल न लेकर उसे यों ही छोड़े रखना। जिन खेतों से विशेष फसलें लेनी होती हैं, उन्हींको इस तरह छोड़े रखने का रिवाज है; मगर साथ-साथ उस खेत को लोग खाद भी विशेष रूप से देते हैं और उस पर "कमइनी" (कामधाम) भी विशेष रूप से करते हैं। इस प्रक्रिया का वैज्ञानिक अर्थ निम्न प्रकार होता है :

(१) विशेष रूप की जोत-कोड़ से उसे प्राणवायु पर्याप्त मात्रा में हासल करा दी जाती है।

(२) उसमें छुटी हुई अगली फसल की सोरों को ठीक तरह से सड़ जाने का मौका दिया जाता है।

(३) विशेष रूप से पाटी जानेवाली खाद में जो भी कचास रह गयी हो (और) जानकारी की कमी के कारण किसानों के हाथों बनी खादें कुछ-कुछ कच्चा यानी अधूरी सड़ी ही रहती हैं) उसे भी ठीक से सड़ जाने का मौका दिया जाता है।

खुलासा : यदि जमीन में "हाल" नहीं रहती, तो बावजूद इस सारी कार्रवाई के पूर्णरूप से सड़ने की प्रक्रिया सिद्ध नहीं होती। इस-लिए खेत जब भी "चौमास" छोड़े जाते हैं, बरसात के मौसिम में ही छोड़े जाते हैं, अन्य किसी मौसिम में नहीं। परिणामस्वरूप चाद में लगायी जानेवाली फसल का उपज भी ड्योढ़ा से अधिक ही होती है।

२८७. इस तरीके को किसान-वर्ग आमतौर पर जानता हो, ऐसा दिखायी देता है; मगर हरी खादों के सम्बन्ध में उसे विशेष जानकारी

नहीं दिखायी देती। फिर भी हरी खादोंवाला तरीका "चौमास" से कहीं अधिक फायदेमंद है। क्योंकि :

(१) हरी खाद वायुमंडल के नत्रजन को जमीन में जो जमाती हैं, उससे पुरानी सोरें तेजी के साथ यानी बहुत ही कम समय में सड़ जाती हैं।

(२) खेतों मे उनके जुतकर गड़ जाने से खेतों को खाद भी ठीक उतनी ही मिल जाती है, जितनी खाद किसान उनमें विशेष प्रयत्न रखने पर ही पाट सकता है।

(३) द्विदल वर्ग के होने के कारण वे सड़ती भी हैं एकदम जल्दी (यानी पॉच ही सात रोज में) और इस वजह से एक फसल के समय तक खेतों को छोड़े रखने की जरूरत भी नहीं रहती।

(४) इन सभी बातों के उपरांत, हरी खादों की वजह से सभी खेतों को पर्याप्त मात्रा में खाद हासिल करा देने का जो जरिया खुल जाता है, उसे लगातार कई साल तक जारी रखने से, खेतों के "पोत" (गढ़न) इतने सुन्दर बन जाते हैं कि वे खेत सजीव प्राणियों की तरह, अटूट रूप से श्वास लेने लगते हैं और जोत-कोड़ से जितनी प्राणवायु अन्य खेतों को मिलती है, उससे कई गुना अधिक प्राणवायु वे यों ही सहज में प्राप्त कर लेते हैं।

२८८ जमीन और पेड़-पौधों का संबंध

(१) जमीन पेड़-पौधों को पोटैशियम, फॉस्फरस, चूना तत्त्व और अन्य क्षार देती है, जब कि पेड़-पौधे जमीन को वायुमंडल से लेकर कोयला तत्त्व और नत्रजन तत्त्व देते हैं।

(२) पोटैशियम से पेड़-पौधों को बाहर से खुराक खींचने की ताकत मिलती है, चूना तत्त्व से और पोटैशियम से उनका शरीर पुष्ट होता है और फॉस्फरस से वे प्रजनन शक्ति प्राप्त करके अपनी नस्ल को कायम रखने में कामयाब होते हैं।

(३) जमीन को कोयला तत्त्व से अपनी प्रधान खुराक मिलती है और नत्रजन से उसे पचाने की शक्ति मिलती है (नत्रजन के योग से, सभी पदार्थ तेजी के साथ द्रवीभूत हो सकते हैं या सड़ सकते हैं)। इन दोनों तत्त्वों से वह अपनी देह की कीटाणु-सृष्टि को पोषकर उससे अपनी देह में एक केशिका-जाल का निर्माण करा लेती है। उस जाल से उसको साँस लेने की और पानी पीने की ताकत हासिल होती है।

(४) बगैर जमीन के पेड़-पौधे नहीं बन सकते और बगैर पेड़-पौधे के जमीन का जीवन उपजाऊ या समृद्ध नहीं हो सकता।

(५) माँ-बच्चे का दैहिक सम्बन्ध चन्द दिन का है, जब कि जमीन और पेड़-पौधों का संबंध शाश्वत है। इसलिए जमीन को पेड़-पौधों से जो कुछ भी मिलता है, उसको वह अपनी निजी कमाई के साथ पेड़-पौधों को लौटा देती है; जब कि पेड़-पौधे भी उनको जमीन से जो कुछ भी मिलता है, उसे वायुमंडल की अपनी कमाई के साथ जमीन को वापस लौटाते रहते हैं।

(६) इस आदान-प्रदान के कारण न केवल इन दो में से किसीको भी थकावट नहीं लगती, उलटे, ये दोनों भी, दिन-पर-दिन, अधिकाधिक पुष्ट होते जाते हैं, अधिकाधिक उपजाऊ होते जाते हैं।

(७) आदान-प्रदान का यह सिलसिला इतना तो अक्षुण्ण रहता है कि मानो ये दोनों संस्थाएँ, एक-दूसरे का अविभाज्य अंग हों। जगह-जगह पर, पेड़ पौधों की किस्में बदलती रहती हैं, मगर उनकी मौजूदगी का तथ्य नहीं बदलता। अत्यंत कड़ी धूपवाले मौसम के लिए और अत्यंत कड़ी गर्मीवाले प्रदेशों के लिए भी उसने पेड़-पौधे बनाये हैं और अत्यंत कड़ी सर्दीवाले प्रदेशों के लिए और मौसमों के लिए भी उसने पेड़-पौधे बनाये हैं। पेड़-पौधों से सदा काल और सभी जगहों पर बराबर आच्छादित रहना जमीन का स्वभाव ही है।

२८९. जमीन के इस स्वभाव को जो ठीक से जानते हैं, वे उस-उस जमीन के लायक और उस-उस प्रदेश और ऋतु के लायक कामिल पौधों की फसलों को ढूंढ लेते हैं और नाकामिल पौधों को न होने देकर, जमीन से बारहों माह कामिल फसलें एक-पर-एक लेते रहते हैं, जब कि जमीन के इस स्वभाव को अस्पष्ट रूप से जाननेवाले किसान साल भर में उससे केवल एक ही दो फसलें लेकर बैठ जाते हैं।

२९०. जमीन के इस स्वभाव को ठीक से जानना तीव्र खेती-विज्ञान की अनिवार्य शर्त है।

卐 卐 卐

: १३ :

चूना तत्त्व

२९१. जमीन में "क्षार" और "अम्ल", इन दोनों गुणोंवाले पदार्थ एक साथ रहते हैं। वनस्पति-जीवन के लिए इन दोनों गुणों की भी जरूरत रहती है और वह जरूरत उनकी संतुलित हालत में रहती है। उस हालत से यदि क्षारत्व बढ़ जाता है, तो जमीन "खारी" हो जाती है और अमलत्व बढ़ जाता है, तो वह "अम्ल" हो जाती है। मनुष्य और अन्य सजीव प्राणी, जिन पदार्थों पर अपना जीवन-निर्वाह करते हैं, वे पदार्थ बगैर जमीन की संतुलित हालत के भलीभाँति नहीं पनपते।

२९२. क्षार तत्त्व अम्ल हालत को होने से रोकते हैं और हो जाने पर उसे मिटाते हैं, जब कि अम्ल पदार्थ "अम्ल" हालत को उपजाते हैं और उसे बढ़ाते भी हैं।

२९३. अमलत्व को उपजानेवाला प्रधान तत्त्व उद्‌जन वायु (Hydrogen) है और क्षारत्व को बढ़ानेवाले तत्त्वों में प्रधान क्षारतत्त्व, चूनातत्त्व है।

२९४. हमारी खुराक के करीब सभी नाज "अम्ल" हैं और जमीन की कीटाणु-सृष्टि के खुराक का प्रधान पदार्थ "मिश्रखाद" भी अम्ल ही है।

२९५. इस अमलत्व को उपजानेवाली उपर्युक्त उद्‌जन वायु को कुदरत दुनियाभर के पानी को सोख-सोखकर सारे वायुमंडल में नियमित रूप से भरती रहती है, (पानी दो हिस्से उद्‌जन वायु के और एक हिस्सा प्राणवायु के योग से बना हुआ है) जब कि चूना तत्त्व को उसने अन्य पोषक तत्त्वों की तुलना में, सर्वाधिक मात्रा में जमीन मे भर रखा है।

२९६. कुदरत की इस व्यवस्था के कारण उपर्युक्त संतुलन की समस्या सामान्यतया कृषकों को नहीं अखरती और देश भर के कृषकों की खेती अनादि काल से अपने ढंग से चलती आ रही है। मगर इस संतुलन के तथ्य की जानकारी के बगैर तीव्र खेती सम्भव नहीं और अन्य मुल्कों के कृषक अपने खेतों से जब धान की उपज प्रति एकड़ औसत चालीस-पचास और सत्तर मन तक कर लेते हैं, तब हमारे कृषकों को प्रति एकड केवल दस मन की औसत से संतोष मानना पड़ता है। क्योंकि इस बात को वे जानते हैं कि सेन्द्रिय खाद की मात्रा बढ जाने से फसल को फायदे के बदले नुकसान पहुँचता है; मगर इस बात को वे नहीं जानते कि अम्लत्व पैदा करनेवाली खाद के (सेन्द्रिय खाद के) साथ-साथ क्षारत्वजनक खाद को भी पाटने से सेन्द्रिय खाद की मात्रा काफी अधिक बढ़ायी जा सकती है और उसके साथ-साथ फसल की मात्रा भी काफी अधिक बढायी जा सकती है। इसलिए खाद काफी मिलने की गुंजाइश जिन विरल परिस्थितियों में रहती है, वहाँ पर भी उसे लेने से वे रुकते हैं, उसके साथ-ही-साथ तीव्र खेती का प्रसार भी हमारे देश में होने से रुकता है।

२९७. क्षारत्व-वर्धक प्रधान क्षार 'चूना तत्त्व' के गुण-दोष

(क) यह मटियार जमीन के सूक्ष्म परमाणुओं को संयुक्त परमाणुओं के रूप मे बाँधता है और इस तरह वैसी जमीनों मे एक केशिका-जाल का निर्माण कर देता है। इससे उन जमीनों की श्वास लेने और पानी को भी भीतर खींचने-टिकाने की ताकत बढ़ती है।

(ख) श्वास पाने की सुविधा के बढने से जमीन में के कीड़े-कीटाणुओं की सृष्टि पुष्ट बनती और बढती है।

(ग) इन कीड़ों के अझोटो बैक्टर (एक किस्म के कीड़े) वायुमंडल के नत्रजन-वायु को खींच-खींचकर जमीन में जमाते

हैं और अन्य वर्गों के कीटाणु जमीन के सेन्द्रिय पदार्थों को विघटित करके उनमें के सभी पोषक तत्त्वों को पेड़-पौधों के लेने लायक बनाते हैं।

(घ) केशिका-जाल के निर्माण से कड़ी जमीनों का 'जोता' भी सुधरता है (यानी उन पर भारी चलनेवाला हल कुछ हलका चलने लगता है) और बलुआ जमीनों की पानी को टिकाने की क्षमता भी बढ़ती है।

(च) चूना तत्त्व जमीन में पटते ही मिट्टी के फॉस्फरस तत्त्व को अन्य तत्त्वों के योग में न जाने देकर अपने योग में ले लेता है, जो योगिक पदार्थ घुलनसार होकर पेड़-पौधों की सोरों के लेने के लिए आसान और सुलभ होता है, जब कि अन्य तत्त्वों के योगवाला फॉस्फरस का पदार्थ मुश्किल से घुलनेवाला और इसलिए पेड़-पौधों की सोरों के लिए दुर्लभ होता है।

(छ) पोटैशियम तत्त्व, जो ऐसे ही अन्य तत्त्वों के दुर्लभ योगों में फँसा होता है, को भी छुड़ाकर चूना तत्त्व मुक्त कर देता और पेड़-पौधों की सोरों के लेने लायक द्रवरूप में ला देता है।

(ज) चूना तत्त्व फसलों में के चूना तत्त्व के अंश को भी बढ़ाता है। इससे उस अनाज का अम्लत्व घटकर उसका क्षारत्व बढ़ता है, जिससे दुनिया भर के लोगों के शरीर में (इंग्लैंड, अमेरिका समेत सभी मुल्कों के भी) चूना तत्त्व की जो कमी है, उसकी कुछ पूर्ति करने का एक सहज तरीका भी हाथ आ जाता है।

२९८. ऊपर-ऊपर से देखने पर यह वहम किसीके मन आ सकता है कि चूना तत्त्व अन्य रासायनिक खादों की तरह जमीन के लिए और कीटाणु-सृष्टि के लिए एक अत्यंत कड़ी और हानिकारक चीज है। मगर ऊपर की बातें जानने पर यह बात सहज ही समझ में आ जायगी कि जमीन-कीटाणु और पेड़-

पौधों के लिए भी चूना तत्त्व ठीक एक माता की तरह सभी काम करता है। जमीन के अम्लत्व को रोकने-मिटाने के अलावा उनके लिए वायु, पानी और कोयला तत्त्व से लेकर नत्रजन, फॉस्फरस और पोटैशियम तक सभी तत्त्वों का प्रबन्ध ठीक से करने का भार वही वहन करता है।

२९९. यह सब कर सकने के लिए उसका अपना गठन भी कुदरत ने उन्हीं तत्त्वों के योग से बनाया है, जो पेड़-पौधों के जीवन में सर्वाधिक उपयोगी हैं:—कोयला तत्त्व और प्राणवायु। पृथ्वी पर यह तत्त्व जिन रूपों में सर्वाधिक मात्रा में पाया जाता है, वे रूप (चूने के पत्थर और खड़िया मिट्टी) इन्हीं तत्त्वों के योग से बने हुए हैं। तात्त्विक भाषा में इन रूपों का नाम है: "केल्शियम कार्बोनेट" और लघुभाषा में है Caco ३। हिन्दी में इसे 'चौन्य कार्बोद' कहना उपयुक्त होगा। उसका पृथक्करण है:

एक हिस्सा 'ca' का यानी चूना तत्त्व का;

एक हिस्सा 'c' का यानी कोयला तत्त्व का; और

तीन हिस्से 'o' के यानी प्राणवायु के।

३००. मगर चूना तत्त्व की इन सभी तारीफों के बावजूद उसकी ये परिसिततताएं नहीं भुलानी चाहिए कि:

(१) ऊपर लिखी कुछ अधिकांश कार्रवाई वह तभी कर सकता है, जब उपर्युक्त पोषक तत्त्व जमीन में मौजूद होते या खाद के रूप में पाटे गये रहते हैं। यदि ऐसा न हो, तो इस तत्त्व को काम करने के साधन नहीं मिलते और इसकी उपयोगिता अतीव सीमित हो जाती है। पेड़-पौधों के पोषण और व्यवस्था-कार्य का यह उत्तमोत्तम संचालक है, मगर उनका सर्वाधिक पोषक नहीं; क्योंकि उनके पोषण और गठन में इसकी अपनी मात्रा नत्रजन, फॉस्फरस और पोटैशियम की तुलना में बहुत ही कम है।

(२) पटते ही पहले साल में यह अपना प्रभाव पूरा-पूरा नहीं दिखा सकता। दूसरे साल से, दर्शनीय तौर पर वह बढ़ता है और तीसरे साल के बाद वह अपनी चरम सीमा तक पहुँच सकता है।

(३) जमीन में इस तत्त्व की मात्रा यद्यपि सर्वाधिक है, फिर भी सैकड़ों साल की अविरत खेती के कारण उसके घुलनसार और लभ्य अंश की मात्रा दिन-दिन घटती ही गयी है और अब उस कमी को नियमित रूप से पूरते रहने की जरूरत पैदा हो चुकी है; खास करके उन धान के खेतों में, जिन पर से अतिवृष्टि का या पहाड़ों पर से उतरनेवाला पानी, हर साल बहता रहता है और उनके इस तत्त्व के घुलनसार अंश को बहाता रहता है। इसके अलावा, उन खेतों में भी इस तत्त्व का पटना उतना ही आवश्यक है, जिनमें तीव्र खेती के उद्देश्य से गोबरादि सेन्द्रिय पदार्थों की खाद पर्याप्त मात्रा में पटती रहती है और अम्लत्व की हालत पैदा करनेवाले तत्त्वों तथा विघटित करने लायक पदार्थों की मात्रा को बढ़ाती रहती है।

३०१. सेन्द्रिय खाद की मात्रा के बढ़ने पर भी फसल की मात्रा जब उसके अनुसार न बढ़े या घटने लगे, तब समझना चाहिए कि खेत की हालत अम्लत्व की ओर जा रही है या पहुँच चुकी है; अब उसे चूना तत्त्व की जरूरत है। मगर समझदारी का और बिना जोखिम का तरीका तो यह है कि जिन खेतों में सेन्द्रिय खाद पर्याप्त मात्रा में पटती रहती है, उनके एक छोटे-से हिस्से में इस तत्त्व को नियमित रूप से पाट-पाटकर जाँचते रहना और जो अनुभव मिले, उसे अपने शेष खेतों पर लागू करते रहना। कुशल वैज्ञानिकों का कहना भी है कि जो किसान अपने निजी प्रयोग नहीं करते, वे वांछित प्रगति नहीं कर सकते।

३०२. इस तत्त्व के पटने के पहले साल में यदि फसल की हरियाली या सहनशीलता में कुछ बढ़ती हो (अथवा पौधों की मजबूती में वढ़ती हो) तो मानना चाहिए कि यह प्रयोग आगे वढ़ाने लायक है।

३०३. चूना तत्त्व मिलने के रूप और स्थान

(क) इस तत्त्व को अधिकाधिक मात्रा में पाने के इसके रूप 'चूने के पत्थर' और 'खडिया मिट्टी' हैं। इसके सर्वाधिक शुद्ध और निर्दोष रूप भी ये ही हैं। इन रूपों में यह तत्त्व खदानों मे पाया जाता है। यह तत्त्व अनेक तरह के जलचर कीड़ों के आवरणों के रूप मे भी पाया जाता है [जैसे सीप (shell) शंख वगैरह में] और इन रूपों में भी यह उपर्युक्त चूने के पत्थरों के समान ही निर्दोष और शुद्ध होता है। इन रूपों के अतिरिक्त यह तत्त्व समुद्र के पानी की सतह के नजदीक, वड़े वड़े "खड़कों" के रूप मे भी पाया जाता है। (समुद्र-जल की सतह के पास मधुमक्खी के छाते की तरह छिद्रजालवाले, कंकरीले भूभाग को नाविक लोग 'खड़क' के नाम से पहचानते हैं।) समुद्र के अनेक तरह के कीड़े इन खड़कों को इतने वड़े-वड़े विस्तारों मे संगठित रूप से बाँधते हैं कि उन पर वड़े-वड़े टापुओं का निर्माण हो जाता है। जो भूभाग पुरातन काल मे समुद्र के गर्भ मे थे और किसी काल मे ऊपर उठकर आज जमीन के रूप में या पहाड़ों के रूप में विद्यमान हैं, उन प्रदेशों मे भी कई जगहों पर ये खड़क नदियों के वहाव से खुलकर ऊपर दिखाई दे रहे हैं। खास करके वे हिमालय की तलहटी में विशेष दिखाई देते हैं, क्योंकि हजारों साल के पहले, हिमालय का सारा प्रदेश समुद्र-जल से आवृत था। इन खड़कों के कंकड, मिट्टी के फेंट से मटमैले होते हैं और उनमे की मिट्टी की मात्रा के अनुपात में उनमे के चूना तत्त्व की मात्रा न्यूनाधिक परिमाण में कम रहती

है। मगर तासीर की हैसियत से इन कंकड़ों का चूना भी खदानवाले पत्थरों के चूने के समान ही निर्दोष होता है।

(ख) इन सब साधनों के अतिरिक्त चूना तत्त्व कई उद्योगों के छाँट के रूप में भी मिल सकता है; मगर छाँट के वे पदार्थ अन्यान्य हानिकारक तत्त्वों के योगवाले होते हैं और उनके लेने में विशेष जानकारी और खबरदारी की जरूरत रहती है।

३०४. परिचय और रासायनिक प्रक्रियाएँ

(क) उपर्युक्त चूने के पत्थर वे ही हैं, जिनसे हमारे मकान बाँधने का चूना बनता है। और सड़क के कंकड़ भी वे ही हैं, जिन्हें हमारी म्युनिसिपैलिटियाँ सड़क बाँधने के काम में लेती हैं।

(ख) चूने के पत्थर को (इन दोनों का यौगिक रूप $Ca\,Co_3$ है) आवे में फूँकने पर उनमें का कार्बोदवायु (Co_2)जलकर उड़ जाता है और शेष में केवल Cao रह जाता है। इस Cao पर पानी छिड़कने पर वह पानी के साथ रासायनिक योग में आ जाता और फूलकर राख जैसा महीन बन जाता है। सूक्ष्माक्षरों में इस रासायनिक प्रक्रिया को निम्नलिखित प्रकार से बता सकते हैं :

Cao + पानी, यानी $H_2o = Cao\ H_2o = Cao_2\ H_2 = Ca\ (oH)_2$। हमारी प्रचलित भाषा मे इस फूले हुए पदार्थ को 'भड़काया हुआ चूना' कहते हैं।

(ग) इस भड़काये हुए चूने को काफी समय तक यदि पड़ा रहने दें, तो वह जलने से उड़े हुए Co_2 (कार्बोदवायु) को वायुमंडल में से वापस खींच लेता और भड़काने के लिए पाटे हुए पानी को छोड़ देता है। यानी वह वापस अपने असली रूप को ($Ca\ Co_3$ यानी चौन्य कार्बोद के रूप को) धारण कर लेता है। देहाती भाषा में इस पुनर्घटित चूने को 'बुताया हुआ चूना' कहते हैं। यह पुनर्गठनक्रिया पूर्ण-

तया संपन्न हो जाने पर जो पदार्थ बनता है, वह खड़िया मिट्टी ही है।

(घ) उपर्युक्त भड़काया हुआ चूना लम्बे समय तक पड़ा न रहकर यदि खेत में जोत दिया जाय, तो उसकी अपने मूलरूप को लौटने की प्रक्रिया तेज गति से होती है, क्योंकि खेत में फैलने से उसका संपर्क-विस्तार काफी बढ़ता है। साथ ही जमीन के अन्दर कार्बोद वायु की घनता भी बाहर की तुलना में अनेक-गुनी अधिक रहती है।

३०५. उपर्युक्त रासायनिक परिवर्तनों के साथ-साथ चूने के वजन में जो परिवर्तन होते हैं, वे इस प्रकार हैं :

माना कि चूने का पत्थर है :	१०० मन
आवे में पकाने पर इसमें कार्बोद वायु जलकर CaO रहेगा :	५६ मन
इस CaO पर पानी देकर भड़काने पर भड़का हुआ चूना बनेगा :	७४ मन
परिपूर्ण रूप से ठंडा हो जाने पर उसमें से खड़िया मिट्टी होगी :	१०० मन

भिन्न-भिन्न रूप की तासीरें, पाटने के तरीके और मात्राएँ

३०६. पकाये और भड़काये हुए चूने की तासीर अधिक-से-अधिक तेज है और प्रारम्भ में वह जमीन के कीटाणुओं को कुछ नुकसान भी पहुँचाती है, जब कि कच्चे बुके हुए चौन्य पदार्थों की तासीर मुलायम है। ये चीजें जितनी बारीक बुकाती हैं, उतनी ही तेज गति से काम करती हैं। ये इतनी ही बारीक बुकानी चाहिए कि मूँग-से बड़े दाने उनमें न रहने पावें। दाने बड़े रह जाय, तो पाटने की मात्रा बढ़ा दें।

३०७. पश्चिम के मुल्कों में ये चीजें महीन पीसकर बिकती हैं। हमारे मुल्क में भी वैसा कुछ इन्तेजाम होने तक हमारे कृषकों को ठंढे किये हुए चूने की शरण लेनी पड़ेगी। जहाँ खदानों से चूने के पत्थर या खड़िया मिट्टी लाना आसान हो या खड़कों के कंकड़ सुलभ हों, वहाँ उनका उपयोग कर लेना चाहिए।

३०८. इसे पहली वर्षा के साथ पाटकर जोत देना चाहिए, ताकि उसको जमीन में पचने का मौका मिले। जहाँ वैसा मौका देने की गुंजाइश न हो, वहाँ इसका राख जैसा बारीकतम हिस्सा पाटने से भी फसल को अधिक फायदा मिलेगा। पचने का समय मिलने से इसका कड़ापन भी ठंढा हो जाता है।

३०९. इसे पाटने का अच्छा तरीका तो मिश्र खाद बनाते समय उसके टाल में मिट्टी की तहों के बदले इस चीज की ½ इञ्च मोटाई की तहें देते जाना है। मिश्र खाद के पकने तक इसका कड़ापन ठंढा हो जाता और यह खाद में पच भी जाता है; साथ ही इसकी मात्रा भी खटाई पैदा करनेवाले पदार्थ के अनुपात में आ जाती है। पर यदि अन्दाजन पाटें, तो कच्चे बुके हुए चौन्य पदार्थों को पाटने की मात्रा प्रति एकड़ सालाना दस मन है। वे चौन्य पदार्थ यदि मिट्टी से फँटाये हुए खड़कों के कंकड़ हों, तो फँटाई हुई मिट्टी के अनुपात से मात्रा बढ़ा लेनी चाहिए। इन कंकड़ों की शुद्धता विभिन्न जगहों पर भिन्न-भिन्न होती है। भड़काये हुए चूने की मात्रा ऊपर बताये हुए वजन-परिवतन के अनुसार, १०० मन की जगह ७४ मन रहेगी।

३१०. विविध जानकारियाँ

प्राणि-शरीर की हड्डियों में उनके शुष्क वजन का तीसरा हिस्सा चूना तत्त्व है।

चौन्य पदार्थोंवाले प्रदेशों के मालमवेशी हड्डगर होते हैं, क्योंकि उन प्रदेशों के उपज के नाज और घास-कड़बी में चूना तत्त्व की मात्रा अधिक रहती है।

आंध्र के 'ओंगोल' नस्ल के बैल हमारे देश की अन्य सभी नस्लों से बेश-बजनी हैं, क्योंकि वहाँ का रिवाज बैलों को हर साल नियमित रूप से जाड़ों में कई महीनों तक कुछ-कुछ तिल की खली खिलाने का है और तिल में अन्य सभी नाजों से चूना तत्त्व की मात्रा अनेकगुनी अधिक है।

सारांश यह है कि चूना तत्त्व के पटने से फसल की मात्रा तो बढ़ती है, मगर साथ-ही-साथ उसके खानेवाले मनुष्यों और माल को अन्य दृष्टि से भी फायदा पहुँचता है।

इंग्लैंड और अमेरिका जैसे संपन्न मुल्कों के बाशिन्दों की खुराक भी इस तत्त्व की कमी पायी जाती है। जिन कौमों की खुराक का प्रधान पदार्थ चावल है, उनमें तो यह कमी विशेष रूप से पायी जाती है। (मतलब यह कि उनकी हड्डियाँ कमजोर होती हैं, उसकी परख उनके दाँतों की हालत पर से आसानी से हो जाती है।) सारांश, चूना तत्त्व के घुलनसार अंश की कमी सभी मुल्कों के करीब सभी खेतों में है और धान के खेतों में तो यह कमी विशेष रूप से है। अर्थात् चूना तत्त्व का पटना सब खेतों के लिए भी फायदे-मंद ही होगा।

यह खाद पटते ही पहले साल में फसल न बढ़ा सके, तो घबराना न चाहिए; अपना असर यह दूसरे साल से दिखाती है और तीसरे साल के बाद ही उसे वह चरम सीमा तक पहुँचा सकती है।

जो फसलें बगैर 'बढियार' (बढिया) खेतों पै ठीक से नहीं उपजतीं, उनके लिए इस तत्त्व का पटना खास जरूरी है।

जिन खेतों में प्रति एकड़ पन्द्रह-बीस गाड़ी से भी अधिक खाद पटती है, उन खेतों को भी इस खाद का मिलना उतना ही जरूरी है। इसके न मिलने से खाद अपना पूरा प्रभाव नहीं बता सकेगी।

जिन खेतों में से वर्षा का पानी बहकर बाहर जाता हो, उनमें का इस तत्त्व का घुलनसार हिस्सा घुला रहता है और उनमें भी इस तत्त्व के पटने की जरूरत है।

जिन खेतों में यह खाद पाटें, उनकी मेड़ों के भी अच्छी मरम्मत कर रखें, क्योंकि इसका घुलनसार हिस्सा दहनेवाला होता है।

मगर अधिक मात्रा पाटकर जमीन में इसके संग्रह (stock) को बढ़ाने की कोशिश न करें। जमीन में यह जितना अधिक रहता है, उतना ही अधिक दहता भी है।

यदि खेत में सेन्द्रिय खाद न पाटनी हो, तो फिर इसे पाटने से कोई मतलब नहीं; क्योंकि पटने पर यह तत्त्व मौजूदा थोड़े बचे सेन्द्रिय पदार्थ को भी तेजी के साथ विघटित कर खतम कर देगा और कीटाणु-सृष्टि के लिए खुराक न बचने पर खेत और भी खराब हो जायगा।

卐卐卐

कम्पोस्ट खाद
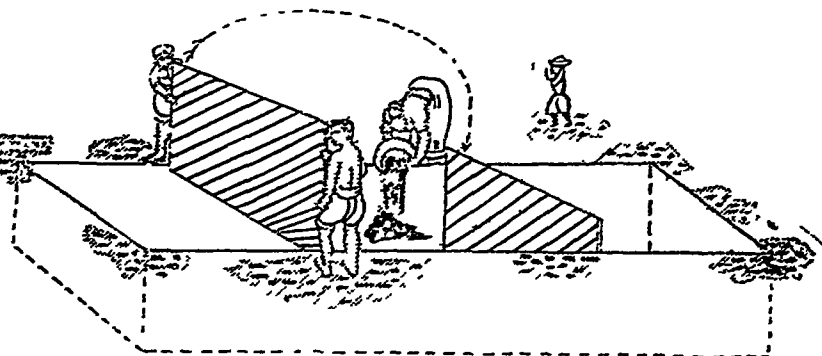
गढ़ा थोड़ा-थोड़ा करके भरा जाय। इससे नत्रजन की रक्षा होगी।

: १४ :

खादयुक्त पदार्थों के विश्लेषण के कोष्ठक

साधारण मार्ग-दर्शन

३११. सभी पोषक तत्त्व कम-वेशी मात्रा में मौजूद रहते हैं। वगैर इन तत्त्वों की मौजूदगी के पेड़-पौधे वनने ही नहीं पाते। किस-किस पौधे और पदार्थ में कौन-कौन तत्त्व किस-किस मात्रा में हैं, यह वात इस प्रकरण में वतायी जा रही है।

३१२. पौधों या पदार्थों में तत्त्वों की मात्राएँ स्थिर या अचल नहीं रहतीं।

उम्र के साथ भी वे वदलती हैं।

पाटी जानेवाली खादों की मात्राओं और किस्मों के साथ भी वे वदलती हैं।

देश-देशांतरों की जमीनों की गढ़न के साथ भी वे वद-लती हैं।

जलवायु के परिवर्तन के साथ भी वे वदलती हैं।

एक ही पौधे के भिन्न-भिन्न अंगों में भी उनकी मात्राएँ भिन्न-भिन्न होती हैं।

३१३. उम्र के परिवर्तन का असर

कम उम्र के पौधों में नत्रजन और फॉस्फरस तत्त्वों की मात्राएँ तुलना में अधिक रहती हैं, जब कि उम्र के वढ़ने के साथ इन तत्त्वों की मात्राएँ तुलना में घटती हैं और चूना तत्त्व और पोटैशियम तत्त्वों की मात्राएँ वढ़ती जाती हैं।

३१४. इसी तरह कम उम्र में ये सभी तत्त्व पौधों के सभी अंगों में तुलना में विशेष समता के साथ फैले रहते हैं। जब पौधे फूल-फल धारण करने योग्य हो जाते हैं, तब ये सभी तत्त्व उनकी फुनगियों की ओर तथा बीजों की ओर विशेष रूप में जुटते हैं और तनों में कोयला तत्त्व और चूना तत्त्व को छोड़ शेष सभी तत्त्वों का अंश तुलना में कम रह जाता है।

३१५. इस घटती में भी नत्रजन और फॉस्फरस का अंश सर्वाधिक मात्रा में बीजों में जाता और तनों में वह कम रह जाता है। पोटैशियम का अंश विशेष मात्रा में फुनगियों में जाता और तनों में विशेष घटता है, जब कि चूना तत्त्व और कोयला तत्त्व का अंश इस तरह तुलना में कम मात्रा में जाता और तनों में तुलना में कम घटता या विशेष रह जाता है।

३१६. इस घटती-बढ़ती में, पोटैशियम का नाप भी कृषि-साहित्य से ज्ञात होता है कि वह तनों की राख में जब ५% से १०% तक रहता पाया जाता है, तब उन्हीं वृक्षों की फुनगियों की राख में वह १५% से २०% तक बढ़ता पाया जाता है।

३१७. उम्र के साथवाले इन परिवर्तन के कारण ये हैं :

ये सभी तत्त्व पौधों की सोरों के जरिये जमीन से खींचे जाते हैं मगर उनकी गति रहती है फुनगियों की ओर—वहाँ पर नयी-नयी रचनाओं को बढ़ाने के लिए।

इन दोनों क्रियाओं की प्रारंभिक गति सामान्य होती है, मगर पौधे जब फूल-फल धरने लगते हैं, तब वह जोर पकड़ती है और फल आ जाने के बाद सोरोंवाला इनका खिंचाव बंद होता जाता है, जब कि तनों में के अवशेषों की फुनगियों की ओर जाने-वाली गति तेज होती जाती है।

इन कारणों को लेकर विविध अंगों में इन तत्त्वों की मात्राओं में हेरफेर होता रहता है।

३१८. ऐसी व्यवस्था के पीछे कुदरत का उद्देश्य क्या है, यह भी स्पष्ट दिखाई देता है। जैसे :

(१) खानेवालों की देह-गठन के लिए बीजों में नत्रजन की आवश्यकता विशेष है, (प्रोटीन यानी प्रोतद्रव्य, जिनसे हमारे शरीर के रक्त, मांस, नस, नाड़ी और चर्म बने हैं, इस तत्त्व के योग बिना नहीं बनते) और प्राणिवंश को टिकाये रखने के लिए फॉस्फरस तत्त्व की भी आवश्यकता बीजों में विशेष है। इसलिए दोनों तत्त्व बीजों में विशेष मात्राओं में जाते हैं।

(२) वायुमंडल के तत्त्वों को भीतर खींचने के लिए पत्तों में पोटैशियम की विशेष आवश्यकता है, इसलिए यह तत्त्व फुनगियों से होकर पत्तों में विशेष रूप से जुटता रहता है और वहीं उसकी मौजूदगी सर्वाधिक मात्रा में पायी जाती है।

(३) तनों को खूब मोटा और सुदृढ बनाने के लिए फायला-तत्त्व और चूना तत्त्व की विशेष आवश्यकता है, इसलिए ये तत्त्व तनों में ही विशेष मात्राओं में रह जाते हैं।

३१९. जमीन की पुष्टता और खादों की मात्राओं पर भी पौधों में रहनेवाले तत्त्वों की मात्राओं का आधार रहता है। जमीन यदि पुष्ट रही या सभी खादें पर्याप्त मात्राओं में पाती रहीं, तो भी पौधों और बीजों के इन सभी तत्त्वों की फी सैकड़ा मात्राएँ घट जाती हैं। अन्यथा इन दोनों स्थानों में भी वे मात्राएँ दर्शनीय हद तक घट जाती हैं।

३२०. ऋतुओं और प्रदेशों का असर भी इसी तरह इन तत्त्वों की मात्राओं पर रहता है। खुश्क और ठंडे प्रदेशों के चावल, गेहूँ और अन्य नाजों में नत्रजन और फॉस्फरस की मात्राएँ अधिक रहती हैं, जब कि गर्म और नम प्रदेशों के नाजों में वे कम रहती हैं।

३२१. देश-देश के विश्लेषकों के साधन और तरीकों में भी कुछ-कुछ भिन्नता है। इन सभी विविधताओं के कारण

वैज्ञानिकों को विश्लेषणों के जो कोष्ठक बनाने पड़े हैं, उनको उन्होंने एक औसत मान पर ही बनाया है और उसी रूप में उन्हें लेना भी चाहिए।

३२२. इन कोष्ठकों से देखने में आयेगा कि :

(१) द्विदलवर्ग के पौधों में नत्रजन और चूना तत्त्व की, मात्राएँ तुलना में अधिक हैं; जब कि शाली वर्ग के पौधों में फास्फरस और पोटैशियम तत्त्वों की मात्राएँ अधिक हैं।

(२) पशुओं की देह से विसर्जित होनेवाले तत्त्वों में करीब सब-का-सब फॉस्फरस और चूना तत्त्व उनके गोबर में विसर्जित होता है, जब कि नत्रजन और पोटैशियम का अधिकांश हिस्सा उनके मूत्र में विसर्जित होता है।

卐卐卐

मूत्र की खाद
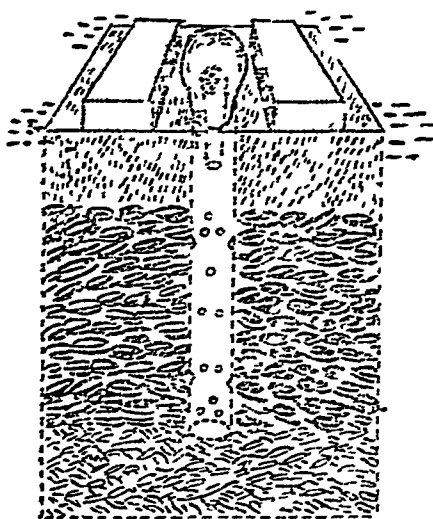
इस खाद में ढाई करोड़ रुपया छिपा है। प्रति व्यक्ति १०½ पौंड नत्रजन, प्रति वर्ष २ पौंड फॉस्फरस। मूल्य = १० रुपया।

खादमय पदार्थों के विश्लेषण का कोष्ठक (अंकों में)

पदार्थों के नाम	चूना तत्त्व %	फॉस्फरस तत्त्व %	नत्रजन तत्त्व %	पोटैशियम तत्त्व %	कोयला तत्त्व %	पानी %	अन्यान्य %	कुल %	कैफियत
१. खेती-बारी की काटछाँट									
गेहूं की कडबी (भूसा सूखी)	०·२०	०·१०	०·६०	०·८०	४५·००	१०·००	४३·३०	१००	
[illegible] की	०·३५	०·१५	०·६५	१·६५	४४·७५	१०·५०	४१·९५	१००	
जौ की	०·३०	०·१०	०·६०	१·२५	४५·००	१०·००	४२·७५	१००	
ज्वार (जनेरा) का हरा चारा	०·१०	०·०५	०·२५	०·३५	१२·५०	७५·००	११·७५	१००	
,, ,, की कडबी		०·१०	०·६०	१·४०	४५·००	१०·००	४२·००	१००	
[illegible] हरी [illegible] और चारा	०·४०	०·०५	०·७५	०·५०	१२·५०	७५·००	१०·८०	१००	
,, का (भूसा सूखा)	१·४०	०·१०	१·२५	१·५०	४८·२५	११·५०	४०·००	१००	
धान का पयाल	०·२५	०·१०	०·६५	१·२५	४६·२५	७·५०	४४·००	१००	
[illegible] का हरा चारा		०·१०	०·३०	०·३५	१०·००	८१·२५	८·००	१००	
,, की [illegible] (भूसा सूखी)		०·१०	०·७५	१·५०	४४·५०	११·००	४२·१५	१००	
मकई का हरा चारा	०·०५	०·०५	०·२०	०·४०	१२·००	७५·००	१२·३०	१००	
,, की [illegible] (भूसा सूखी)	०·४५	०·१०	१·००	१·७०	४५·२५	९·५०	४२·००	१००	
[illegible] (… चूना, … [illegible])		०·५०	०·३५	०·३५					

खादमय पदार्थों के विश्लेषण का कोष्ठक (अंकों में)

पदार्थों के नाम	चूना तत्त्व %	फॉस्फरस तत्त्व %	नत्रजन तत्त्व %	पोटैशियम तत्त्व %	कोयला तत्त्व %	पानी %	अन्यान्य %	कुल %	कैफियत
२. मलमूत्र									सालभर का एक व्यक्तिका
गोबर ताजा	०·०५से ०·२	०·२०	०·३५	०·१५	७·००	८६·००	६·३०	१००	P N K
गोमूत्र		०·०५	१·००	१·००	३·२५	९२·००	२·७०	१००	१४·५० २५·५० ११·००
पाखाना		०·३५	१·००	०·३५	११·००	७७·००	१०·३०	१००	२·७० ५४·०० ५४·०० ०·४० १·२० ०·४०
पेशाब		०·१०	०·५५	०·३०	१·५०	९७·००	०·५५	१००	०·७० ३·५० २·५०
३. खलियाँ									
अलसी (तीसी) की	०·३५	१·७०	५·५०	१·३०	४५·००	९·००	३७·१५	१००	
तिल की	२·००	२·००	६·२५	१·५०	४५·००	७·००	३६·२५	१००	
तोरी की		२·००	५·५०	१·१५					
नारियल की	०·२०	१·५०	३·५०	२·००	४५·२५	९·३०	३८·२५	१००	
नीम की		१·२०	५·२०	१·५०					
बिनौले गुद्दे की	०·२५	३·००	६·५०	२·००	४६·७५	६·५०	३५·००	१००	
बिनौले छिलकेदार की	०·२०	१·७५	४·००	१·५०	४६·५०	७·००	३९·०५	१००	
मूँगफली की	०·२०	१·५०	७·२५	१·३०	४६·००	७·००	३६·७५	१००	

खादमय पदार्थों के विश्लेषण का कोष्ठक (अंकों में)

पदार्थों के नाम	चूना तत्त्व %	फॉस्फरस तत्त्व %	नत्रजन तत्त्व %	पोटैशियम तत्त्व %	कोयला तत्त्व %	पानी %	अन्यान्य %	कुल %	कैफियत
भस (जलाई हड्डी की)	४०·००	४०·००	०·००						
मैदा (उबली हड्डी का)	२५·००	२९·२०	१·१०						
रवा (जलाई हड्डी का)	२९·००	२९·००	१·००						
सूपरफॉस्फेट (रासायनिक)		१६ से १७·००							
६. फुटकर पदार्थ									
राख गोबर की	०·५० से १·१५	३·००		२·३०					
राख काठ की	३०·००	२·००		५ से २५·०					
,, केले के पत्ते और स्तंभ की				४०·००					

विषय-सूची (वर्णानुक्रम से)

पुस्तक के हरएक परिच्छेद (paragraph) को नंबर दिये गये हैं। नीचे हरएक विषय के सामने दिये गये अंक परिच्छेदों के हैं।

दधीचि-यंत्र

द्विदल-वर्ग के पौधे

नत्रजन तत्त्व

पारिभाषिक शब्द और उनके शब्दार्थ एवं भावार्थ

पेड़-पौधे

पोटैशियम तत्त्व

पोषक तत्त्व

पोषक तत्त्वों की मात्रा